TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178933

UNIVERSAL
LIBRARY

H 83·1 H3066
M 3H P
..... માર્કણ્ડેય.
..... પાન – ફૂલ. 1957.
19 FEB 1962 (Shamal Ph.D.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 831 Accession No. H 3066.

Author M 34 P Q
માવળંકર.

Title .... પાન - પુલ. 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below.

पान-फूल

'पान-फूल' 'महुए का पेड़' और 'हंसा जाई अकेला, में मार्कण्डेय की कहानियाँ और 'पत्थर और परछाइयाँ' में एकांकी संगृहीत हैं।

'सेमल के फूल' नामक लम्बी प्रेम-कथा के प्रकाशन के बाद, इनका एक नाटक 'ज्वालामुखी' और उपन्यास 'जोड़ा-चक्र' शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

पान-फूल

मार्कण्डेय की कहानियों का पहला संग्रह

नया साहित्य प्रकाशन
की ओर से

प्रकाशक
राज कमल प्रकाशन
प्राईवेट लिमिटेड
दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, बम्बई, मद्रास

दूसरा संस्करण : जून, १९५७
पुस्तक संख्या-४, ग्राम-साहित्य-माला—३
आवरण : जगदीश मित्तल
मूल्य : ~~दो रुपये, पचहत्तर नये पैसे~~

मुद्रक : भार्गव प्रेस, इलाहाबाद
प्रकाशक : नया साहित्य प्रकाशन
इलाहाबाद-२, की ओर से
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

भाभी को

अनुक्रम

गुलरा के बाबा	:	९
वासकी की माँ	:	२१
नीम की टहनी	:	३३
सवरइया	:	४१
पान-फूल	:	५१
घूरा	:	६१
रेखाएँ	:	७५
राम लाल	:	८७
संगीत, आँसू और इन्सान	:	१०१
मुंशी जी	:	१११
सात बच्चों की माँ	:	१२१
कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए	:	१३१

दूसरी बार

'पान-फूल' का प्रथम संस्करण तीन वर्ष पहले, भाई बद्री विशाल पित्ती की प्रेरणा से, नवहिन्द पब्लिकेशन्स हैदराबाद ने छापा था। तब से, इस लम्बी अवधि में, पाठको एवं लेखक-बंधुओं ने इन कहानियों पर बड़ी रुचि से विचार-विमर्श किया है; मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ।

आशा है, प्रस्तुत संस्करण से पाठकों की यह शिकायत कि पुस्तक उन्हें बाज़ार में सुविधा पूर्वक नहीं मिल सकी, मिट जाएगी।

जून,' ५७
२ डी, मिन्टो रोड, — मार्कण्डेय
इलाहाबाद

गुलरा के बाबा

"कवन है रे वह सरपत काट रहा ?" बाबा ने अमिलहवा के नीचे खड़े हो कर अपनी लाठी कंधे से उतारते हुए कहा। आवाज़ सारी गुलरा में गूँज गयी। बड़ी गम्भीर और बड़ी बुलंद आवाज़ थी वह, अनजान आदमी तो एक बार डर जाए और चिरइ-चुरमुर भी पेड़ों पर से उड़ पड़। गुलरा की इस आमों की बगिया का एक-एक जीव, एक-एक पत्ता बाबा के इस गर्जन से परिचित है। क्यों न हो, बाबा रात-दिन इन्हीं पेड़ों की सेवा-सत्कार में तो लगे रहते हैं।

पर बाबा की पुकार का कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने एक बार नीचे सिर किया और अपने उघरे शरीर को देखा, चमड़े झूल गये थे और उन पर बेशुमार झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। पूरे पचहथे जवान, भींट ऐसी छाती और हाथी की सूँड़ जैसे हाथ, बड़ी-बड़ी तेज़ आँखें; लोग हनुमान कहते थे बाबा को, हनुमान! मेले-ठेले में अपने पिता गंजन सिंह को रास्ता बनाने का काम बाबा ही करते थे। बड़ी-बड़ी भीड़ को पानी की काई की तरह इधर-उधर कर देना उनके लिए कोई विशेष बात न थी। बखरी में खाने घुसते समय बिटियों-पतोहुओं को जता देना तो ज़रूरी होता न! बाबा दालान ही में से खाँसते और सारी बखरियों के कुत्ते मारे डर के भाग कर बाहर हो जाते।

बाबा के दिल को धक्का लगा। वे गुलरा के बाबा कहे जाते हैं, इतना बड़ा जंगल और बाग उनके ही ऊपर तो छोड़ रक्खा है परिवार वालों ने, और यहाँ दस कोस में कौन नहीं जानता इसे....उनका आहत अभिमान नयी भाषा में बोला—बुढ़ापे के एहसास के कारण—और क्रोध की हल्की गर्मी उनके शरीर में दौड़ गयी। उन्होंने बगल में देखा,

लेहसुनवाँ में नये गोंफे आ गये थे, शायद इस साल इसमें बौर भी आ जाएँ, और फिर धीरे-धीरे उस हिलती सरपत की ओर चल पड़े।

चैतू अहीर था—पूरा चेलिक: क़रीब चौबीस-पचीस का. काला मजीठ शरीर, जैसे कोल्हू की जाट। इसी ने तो बनारस के मशहूर पहलवान झग्गा को पटक दिया—केवल दो ही मिनट में।

चैतू बाबा को देख कर रुक गया।

"सलाम ठाकुर!"

"खुश रहो चैतू; लेकिन तुम यह क्या कर रहे हो?"

"सरपत काट रहे हैं ठाकुर!"

"अच्छा, कल से मत काटना!"

"ऐसे ही काटूँगा।" और चैतू लटक कर हँसिया चलाने लगा।

"यह बात नहीं चैतू!" बाबा सागर की-सी गहराई से कहते गये, "मैं तुम्हारी बातें समझ रहा हूँ। अपने दो-एक संगी-साथियों और बूढ़-पुरनियों को भी बुलाये आना—यहीं; यदि तुम मेरा गट्टा टेढ़ा कर दोगे, तो मैं कभी जबान नहीं खोलूँगा और यदि नहीं, तो तुम कल से यहाँ दिखाई न पड़ना?"

चैतू कटी-कटाई सरपत छोड़ कर चला गया। दूसरे दिन बाबा, सभी भाई, कुछ गाँव के तमाशबीन और चैतू के अपने संगी-साथी; खासी भीड़ हो गयी थी। बाबा ने बाँह फैला दी—बीते भर नीचे तक झुर्रीदार चमड़ा लटक गया और चैतू ने दाँत पीस-पीस कर ज़ोर लगाया—माथे पर पसीना हो आया, पर बाबा का हाथ टस से मस न हुआ।

किसी ने कहा, "बस चैतू, अब तुम अपना हाथ फैलाओ!" चैतू ने हाथ फैलाया और बाबा ने बच्चे की तरह उसे मरोड़ कर दबा दिया। चैतू चिचिया उठा। बाबा ने छोड़ दिया।

बाबा के छोटे भाई देवीसिंह बड़े लठैत थे। उनसे चेतू की यह धृष्टता देखी नहीं जा रही थी, पर बाबा ने कहा, "नहीं, ऐसा मत करो!" और अब, जब वह हार गया, तो वे एकाएक उबल पड़े, "कहो तो दे दूँ दो बाँस साले की पीठ पर!" बाबा ने देवीसिंह को डाँटा। वे सिटपिटा गये। चारों ओर बाबा के पौरुष की तारीफ़ें होने लगीं, पर वे जैसे उदास हो गये थे।

फागुन के दूसरे पखवारे के थोड़े ही दिन बाकी थे—दिन की सुनहली धूप, शाम को अबीरी आकाश और रात की रुपहली टहकी चाँदनी—खलिहान जौ-गेहूँ के डाँठ से खचाखच भरे हुए। हवा भी चिबोला करती है न! बकरिंदिया ठाकुर के घर से नह काट कर लौट रही थी—फगुनहट का झोंका आया और आँचल उड़ा कर चला गया—"शरमा गयी बकरीदा! इसमें क्या बात है जी, फागुन में बाबा देवर लागें!" देवकी पंडित ने आज खूब छान ली थी।

"भौजी ने मेरी सिलिक की कमीज़ रद्द कर दी।" नन्हकुआ मुस्कुराता जा रहा था और हाथ से कमीज़ सुखा रहा था।

"जोतावो आज खूब फँसी। बड़ी उस्ताद बनती थी न! आज पड़ गया सुधुआ से पाला, कलाई मरोड़ कर रंग का लोटा छीन लिया और खूब नहला कर गालों पर ऐसी रोली मली कि बच्ची को छट्ठी का दूध याद आ गया।"

"बड़ा बुरा किया—राम! राम!! कुनरु-ऐसे गाल इतने ज़ोर से मलने के लिए थोड़े ही हैं।" रामदीन खाँसते हुए बोले और खटिया पर करवट बदल ली। पारस ने मुँह बनाते हुए जवाब दिया, "बुढ़ापा आ गया, लेकिन लत न छूटी। मरते-मरते जीभ में कीड़े पड़ जाएँगे बाबा!—अब तो मान जाओ, आखिरी समो में!"

गुलरा के पलासों पर तो फागुन उतर आया था, अजब का फूल होता है—लाल टेस, और टहनियाँ काली या चितकबरी—बे-पत्तियों की। शाम की किरणें रोज़ उन पर थम जाती हैं और आम की बगिया की साँवरी छाँह जैसे उसकी ललछहट में एक खैरी-मटमैली रेखा से बँट जाती है। बाबा एकटक नीचे देख रहे हैं—गोमती की तलहटी में—पछुवा का वेग, पानी की लहरें और उसमें पड़ती हुई सुनहली रेखाएँ और पलास की छायाएँ। बसहटा चारपाई, हुक्का-चिलम, फरसा-कुदार, गगरी और बाँस की पुरानी लाठी—सब एक नन्हीं-सी मड़इया में। सुखई चिलम भर कर देता जा रहा है—बाबा का चेला है, अखाड़े का—बड़ा गठीला ज्वान। बाबा ने अपनी सब पेंच इसी को सिखायी—पट्ठ तो इतना रवाँ है कि एक बार गामा को भी उठा कर फेंक दे।

सुखई ने चिलम पर दम लगाते हुए कहा, "बाबा! आज मनकिया भी आ गयी। अब तो छे रंडियाँ हो गयीं: मुदा चमेलिया जैसी गाने वाली...." बाबा की आँखें जैसे पलास के फूलों में धस गयी हों। दिन की उदासी जैसे घनीभूत हो कर गुलरा के झपसे आमों की डाल पर बैठ गयी हो।

चमेलिया बचपन से आती थी। इस गाँव में फागुन के छै दिन ठाकुर के चबूतरे पर तबला ठनकता ही रह जाता। एक नहीं दस-दस रंडियाँ आतीं।

उस समय बाबा बच्चे थे। बड़े ठाकुर के चौथे-पाँचवें पुत्र थे शायद; और ठाकुर के साथ महफ़िल में बैठते। एक दिन खेलते-खेलते गये और पतुरिया की नन्ही बच्ची के कुर्ते की छोर पकड़ कर खींचने लगे। "अभी से सीख रहा है!" किसी ने ठहाका मारा और लड़की चिल्ला कर रोने लगी। चमेलिया बाबा के साथ ही जवान हुई और उसने अपनी माँ की गद्दी को जगाए रखा।

उसका स्वर, उसका रूप और उसके पाँवों की थिरकन लोगों को मोह लेती थी, और जब बाबा होते, तब क्या पूछना ! जैसे उसके पैरों में पँछियों वाले पंख जुड़ गये हों। वह पुरानी कहानी बाबा भी जानते थे और चमेलिया भी, पर बाबा की भौंहें कभी टेढ़ी नहीं हुईं, और चमेलिया कभी हारी नहीं।

जाते समय इनाम के बाद भी बाबा से रुपये माँगना—ज़रूरत न रहने पर भी। "रुपये ले जा चमेली ! पर इसे कर्ज समझना !" चमेलिया एक तीखी हँसी हँसती, जैसे वासना का जीवित स्वर उसके कंठ में उतर आया हो। उसकी आँखें, चेहरा, सब दमदमा उठते पर बाबा स्थिर और गम्भीर ! उनके उन्नत वक्षस्थल पर बनी हुई कड़ी-कड़ी मांसपेशियाँ और बलिष्ठ भुजाएँ, जैसे सीक से छू दो तो खून आ जाए, और चमेलिया उसे देखती-देखती चली जाती।

उस साल वह जा ही तो रही थी, पर रास्ते के लिए इतना सिंगार-पटार, जैसे मेनका धरती पर उतर आयी हो। लम्बा छरहरा सुडौल बदन और कुल बीस वर्ष की उमर; चमेलिया बाबा का कर्ज़ चुकाना ही चाहती थी। गुलरा केराकत स्टेशन के रास्ते में पड़ता है। 'समाजी' घाट पर चले गये और चमेलिया बगिया में घुसी। बाबा कसरत करके पसीना सुखा रहे थे। खटिया रेत पर पड़ी थी। रोशनी सँवरा गयी थी। थोड़ी ही देर में रात होगी और बाबा घर खाने जाएँगे पर एकाएक नूपुर की आवाज़—बाबा ने गरदन घुमायी, "चमेलिया, तुम यहाँ !"

"हाँ, कर्ज़ चुकाने आयी हूँ।" आम्रपाली आम की बगिया में उतर आयी, पर बुद्ध का वहाँ कोई शिष्य नहीं था वर्ना आँख पर पट्टी बाँध लेने के लिए कह देते। "मैंने कभी तगादा किया था !"

"फिर भी वह कर्ज तो है।" कह कर वह मुस्कुरायी—एक मोह-

भरी मुस्कान की रोशनी बिखर गयी। बाबा कपड़े नहीं पहने थे। एका-एक ध्यान गया। बढ़ कर धोती उठाना चाहते थे पर उसने लपक कर धोती उठा ली और कस कर सीने में दबोच कर एकटक बाबा की ओर देखने लगी—बड़ी तेज़ आँखें थीं—कटार की तरह।

"मुझे देखने भी न दोगे!"

नीचे से ऊपर तक जैसे साँचे में गढ़ा शरीर—मँसें भीन ही रही थीं, एक अजीब कसाव और ऐंठन!

"मैंने ऐसा शरीर नहीं देखा है।" उसने अपनी आँखें तिरछी करते हुए कहा। अचूक आँखें थीं ये—नेह से छलछलायी हुई।

बाबा नीचे सिर किये ही हँसे, "ऐसे उरिन नहीं होने की चमेली!"

चमेलिया के चेहरे पर पराजय की हिंसा चमकी। एक तेज़, एक जोश उसकी आँखों में उतर आया—बिलकुल अनदेखा; वह सारी शक्ति लगा देगी।

बढ़ कर बाबा के पैरों के पास बैठ गयी। नंगी, तेल से चुपड़ी-चिकनी जाँघों पर नरम-नरम गाल घिस दिये। हाथों से कमर पकड़ ली। गरम कड़ी-कड़ी छातियों में पिंडलियाँ कस लीं, पर बाबा चुप तो चुप। उनके तीसरा नेत्र नहीं था वरना शंकर की तरह आज काम को जला देने की ठान लेते, पर चमेलिया स्त्री थी, स्त्री पर हाथ उठाना? यह बाबा से नहीं हो सकता था।

"जा चमेलिया, तेरी आँखों का दोष मिट जाएगा।" बाबा ने बड़ी उदासी से कहा। चमेलिया की आँखें चकरा गयीं। उसका रोयाँ-रोयाँ काँप गया। आँखों का दोष मिट जायगा? वेश्या की आँखों का दोष?

और चमेलिया उसी साल अंधी हो गयी।

सुखई ने मौन तोड़ा।

"अब तो देर हो रही है बाबा!"

"हाँ रे, मैं तो भूल ही गया था कि घर भी चलना है।" बाबा ने एक फीकी हँसी हँसते हुए कहा।

रात काफ़ी बीत चुकी थी। बगिया में घना अँधेरा छा गया था। एकाएक बाबा को आम की सोर से ठोकर लग गयी।

—बाबा को ठोकर कभी नहीं लगती थी गुलरा में। सुखई सोचते-सोचते कहने लगा, "बाबा! यह वही पेड़ है, याद है न?"

"याद है सुखइया। गज़ब की सिल्ली थी इसकी। अभी तक इसकी खुत्थियाँ बची ही रह गयी हैं!"

कई वर्ष पहले की बात है, जब बड़की बखरी बन रही थी। गर्मी का महीना—आराकस लगे थे। अकेलवा आम कटा था। काँड़ियाँ चीरी जाने को थीं। सिल्ली अहार कर ठीक कर ली गयी थी। गढ़ा खोद कर तैयार था। दस आराकस और आठ चरवाहे-लोहार—कुल मिला कर अठारह। हलाकान हो गये बेचारे—एड़ी का पसीना चोटी पहुँच गया पर सिल्ली टस से मस न हुई। आखिर थक कर बैठ गये। बाबा रस-दाना करके गुलरा आ रहे थे—पूछा, "क्या रे, पेड़िया नहीं चढ़ी!"

"यह जुम्मिस भी नहीं खा रही है बाबा! आओ, आपके साथ भी ज़ोर लगा कर देख लें।"

सब उठ खड़े हुए। बाबा के साथ यही सुखइया था—कुल सोलह वर्ष का और एक बारह वर्ष का छोकरा गड़ेरिया।

बाबा ने बड़ी स्थिरता से कहा, "अब तुम लोग बैठो ही। देखो हम तीनों कुछ कर सकते हैं?"

बाबा ने सिल्ली का माथा थामा। ऊपर को उठाया और झटका देकर उसे हाथों पर रोक लिया, दोनों लड़के इधर-उधर; एक बार और ज़ोर लगा। बाबा ने कहा, "शाबाश मेरे बेटो!" और दूसरे झटके में सिल्ली खड़ी हो गयी।

आराकस सन्न रह गये। बाबा को भी कुछ पसीना हो आया। उन्होंने कहा, "आड़ लगा कर चीरो!" और तनिक दूर हट कर लेहसुनवाँ की छाया में बैठ गये। दोनों लड़के भी वहीं छहाँने लगे।

सब के सब—आराकस और लोहार बाबा के पास पहुँचे। उनमें एक लोहार था—लड़ता-भिड़ता भी था। कहने लगा, "बाबा, बड़ा ज़ोर है आपके गट्टे में!"

बाबा हँसे, "अरे, यह मेरा ज़ोर नहीं, यह तो सुखइया और नगइया का है!"

बच्चे हँस पड़े। लोहार ने कहा, "नहीं बाबा, वे सब बच्चे हैं, क्या ज़ोर लगाएँगे।"

बाबा ने कहा, "बात मानो, यह उन्हीं का ज़ोर है।"

फिर लोहार ने हँसते हुए सिर हिलाया।

"अच्छा, तो फिर तुम उससे कुश्ती लड़ कर देख लो!" बाबा ने वैसे ही कहा और दोनों की कुश्ती हो गयी। हाथ मिला और फिर दूसरे ही क्षण सुखइया लोहार के सीने पर था।

बाबा हँसे। लोहार शरमा गया। "सचमुच इन सबों में ज़ोर है।" लोहार फुसफुसाया और उठ कर सब काम पर चले गये। बाबा देर तक हँसते रहे।

बाबा चौके में चले गये थे। थाली परसी जा चुकी थी, तब तक देवीसिंह एकाएक घर में घुसे।

बाबा ने उनकी ओर देखा, "क्या नाच बन्द हो गयी ?"

"नहीं तो। अरे चैतुआ साले की टाँग टूट गयी। खबर लगी, हम लोग उठ कर पता लगाने चले गये।"

"क्या कहा ?" बाबा जैसे भौंचक्के-से हो गये।

"अरे गरूर का नतीज़ा यही होता है। गट्टा टेढ़ा करने आया था न ठाकुर का। अब इन कमीनों की हिम्मत इतनी हो गयी ?" देवीसिंह ने मुँह बनाते हुए कहा।

बाबा बिगड़ गये, "तुम्हें ज़िन्दगी-भर तमीज़ नहीं होगी, आख़िर कैसे टूटी टाँग ?"

"जाके देख क्यों नहीं आते बड़ी मोह है तो, वह तो टूटनी ही थी। आज अखाड़े में टूटी कल हम लोगों की लाठी से टूटती। गुलरा से सरपत न काटने गया था !"

थाली परसी रही; पर बाबा रुके नहीं। वे यह काम तो जानते हैं—कितनी दूर-दूर के लोग उनके यहाँ हड्डियाँ बैठवाने आते हैं ? और दौड़ कर मन्ना साव की दूकान पर पहुँचे—"अम्माहल्दी चोट मुसब्बर, सेतखरी"—पुड़िया बँध गयी। बाबा ले कर दौड़े। चाँदनी पिघल कर धरती पर पसर गयी थी। हवा के झोंके इस ओर से उस ओर चले जाते थे—बुढ़ाई का समय, अब कहाँ है वह चाल ? बाबा सोचने लगे—कितना अच्छा लड़ैत है। उस दिन कितना ज़ोर लगाता था। झग्गा कोई मामूली पहलवान थोड़े ही है—दो मिनट में उसे दे मारा। अब तो गाँव का नाम यही रखे है।

चैतू का घर आ गया। बाबा थक कर चूर हो गये थे। साँसें

बढ़ गयी थीं। तनिक थम कर देखने लगे—लोग घेरे थे और चैतू ज़मीन पर पड़ा तड़फड़ा रहा था। टाँग कमर के पास वाले जोड़ से सरक गयी थी।, सब लोग हट गये। बाबा ने हाथ लगाया—"थोड़ा तेल तो लाओ और यह दवाई ज़रा पीस लेना।" उन्होंने देखा, चोट बड़ी बेतुकी थी। चैतू को पट्ट सुला दिया, फिर तेल लगा कर माँजते-माँजते एकाएक पैर लगा कर उन्होंने चैतू की टाँगें हाथ से उठा दीं। चट की आवाज़ हुई और चोट ठीक हो गयी, हड्डी बैठ गयी। बाबा ने दवा गरम करवायी और चोट पर बाँध दिया।

चैतू होश में आ गया था, उसकी माँ और बीबी दोनों एक टक बाबा को देख कर रो रही थीं—खुशी के मारे। चैतू ने भी देखा—आँखें मुलमुलायीं, फिर एकाएक बोल उठा, "बाबा!" और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। बाबा ने उसका सर अपनी जाँघ पर टिका लिया। इधर-उधर देखा। चैतू का छप्पर टूटा पड़ा था। बखरी का ओसार भी छान्ह का ही बना था—वह भी सड़ गया था।

बड़े सवेरे जब पलाशों की लाली पर सूरज की किरणें एक-एक कर उतर रही थीं—गुलरा की सरपत में पच्चीस मज़दूर लगे थे—कटाई हो रही थी।

सुखई ने पूछा, "क्या होगी सरपत। बाबा?"

"चैतुआ की छान्ह टूट गयी है रे!" बाबा ने उत्साह से कहा।

वासवी की माँ

"वासवी मेरा ही नाम है। मेरे पिता जी व्यापारी हैं, पर उन्हें कला से बड़ा लगाव है। पहले वे मुझे वसंतलतिका कह कर पुकारा करते थे, फिर उन्होंने वासन्ती कहना शुरू किया और अब वासवी कहते हैं। साहित्य और चित्र-कला में उनकी बड़ी अभिरुचि है। व्यापार के समय के बाद प्रायः वे पुस्तकें ही पढ़ा करते हैं। कभी-कभी लंबे-लंबे बालों और सूखे आम के-से चिचुके चेहरे वाले लोग भी हमारे यहाँ आते हैं, जो हँसते कम हैं, कुछ खोये-खोये-से रहते हैं और पिता जी को चित्र दे कर उनसे रुपये ले जाते हैं।

"पिता जी को निरुद्देश्य सूनी जगहों में घूमने का भी शौक़ है। प्रायः मुझे भी वे साथ रखते हैं। बनारस में गंगा के ठीक कगार के ऊपर मेरा घर है। उसके नीचे दरेर कर बहती हुई, पानी की तेज़ धार, जो लुढ़कती हुई अनजान मंज़िल की ओर भागी चली जा रही है; मेरे मनोरंजन, चिढ़ और उदासीनता के लिए काफ़ी है। इसके अलावा मेरे दूसरे साथियों में, मेरे घर की रसोइया, सीता और मेरे पिता जी का चित्र-संग्रह है।

"रसोइया अधेड़ उम्र की पढ़ी-लिखी विधवा ब्राह्मणी है। पर उसमें मस्खरापन बहुत है। इधर कुछ दिनों से वह मेरी स्लेटी जारजट की साड़ी में टँके हुए ज़री के गोटे और सीधे-सादे ब्लाउज़ की लंबी बाहों पर रह-रह कर लट्टू हो जाती है, और कभी-कभी मेरे लंबे, धुले हुए सूखे बालों में अपनी अंगुलियाँ दौड़ाने को बेचैन हो उठती है। जब कभी ज़िद करके वह मेरे बालों को काढ़ने बैठती है, तो थोड़ी देर बाद मेरे सिर को अपने सीने से चिपका लेती है, और उसके मांसल, किन्तु गर्म हाथ, मेरे माथे पर चिपक जाते हैं। मैं

भी जैसे किसी रंगीन और अनुभूति-विशिष्ट भावधारा में बहने लगती हूँ और एकाएक मेरे सामने गंगा की लहरों का थिरकता हुआ प्रवाह मय जल, अजीब रंगरेलियाँ उपस्थित कर देता है, और उसमें अनेक नन्हीं-नन्हीं डोंगियाँ—जिनमें .खुश किलकारी मारते हुए बच्चे, स्त्री-पुरुष, मेरी आँखों में आ कर टिक जाते हैं। इस क्षणिक स्वप्न के टूटते ही, जब मैं उलट कर सीता का मुख देखती हूँ, तो उस पर न जाने कहाँ की विषादमय रेखाएँ, अनगिनत शाखाओं के साथ फैली हुई नज़र आने लगती है, और उसकी काली-काली पुतलियाँ जैसे किसी घने-भूरे कुहरे के भीतर से किसी दूर की मटमैली चित्रावली की ओर टिकी जान पड़ने लगती हैं। जब मैं पूछती हूँ, 'क्या बात है सीता?' तो वह उठ कर खिड़की के पास जा खड़ी होती है, और खामोशी से देर तक नीचे देखती-देखती, फिर अपने काम में लग जाती है।

"यद्यपि सीता की इस रहस्यात्मक उदासी से मुझे दुख होता है, पर सीता का रूप न जाने क्यों मुझे बहुत सुहावना और भावमय लगता है—जिसमें वह घर की नौकरानी ही नहीं बल्कि एक अत्यन्त विचारवान् स्त्री के रूप में मेरे सामने आती है। फिर उसका रूप, स्वभाव और व्यक्तित्व मेरे ऊपर छा जाता है। सीता की कही हुई एक-एक बात मुझे याद आने लगती है, 'स्त्री इस गंगा की मुक्त धारा से कम नहीं है।' फिर एकाएक कुछ उदासीन हो कर, 'नहीं, नहीं, स्त्री इस नीचे बहते हुए गंदे नाले के पानी से ज्यादा नहीं है। उसका मन, उसका शरीर गुलामी की सांस्कारिक जंजीर में कस कर, फँस गये हैं, और वह जी कर भी नहीं जीती। उसकी सेवा, शृंगार, शीलता सब झूठे दंभ हैं, जिनकी छाया में वह घुल-घुल कर मर रही है, और विवाह.....?' उसके चेहरे पर एक विकृति की रेखा आती है, जिसमें कई चीज़ें साफ़-साफ़ लिखी मिलती हैं।"

"मेरी समझ में बिलकुल नहीं आता कि आख़िर इस सब का मतलब क्या है ? वह कहना क्या चाहती है ? फिर कभी-कभी सोचती हूँ—शायद बचपन ही में विधवा हो जाने के कारण उसमें पुरुष-जाति के प्रति इतनी कटुता आ गयी है।

"कल ही की तो बात है, जब पिता जी चार दिन के लिए बाहर चले गये। घर में केवल मैं और सीता ही रह गयी थीं। मैं देखती थी कि पिता जी की हाज़िरी में उसकी भौंहें चढ़ी रहती थीं और वह अपेक्षाकृत गम्भीर रहते हुए, अपने को घर के कामों में लगाए रहती थी। पिता जी भी उससे बड़ी सरलता से पेश आते थे। मैंने सुन रखा था कि जिस साल मेरे पिता जी ने शादी की, उसी साल यह मेरे घर में आयी थी। तब से लगातार इसी घर में रहती है। विधवा होने पर नौकरी खोजते खोजते यह यहाँ आ पहुँची थी और थोड़े ही दिनों में मेरी माँ की अंतरंग बन गयी थी। मुझे यह भी बताया गया है कि मेरी माँ बहुत पढ़ी-लिखी थीं। उन्हे कला से बड़ी मुहब्बत थी। उनकी बनायी हुई लाइब्रेरी और चित्र-कार्नर अब भी मेरे घर में मौजूद हैं। विभिन्न कला-प्रवृत्तियों के बने हुए चित्रों का बृहत् संग्रह, और अंग्रेज़ी, हिन्दी और बंगला की चुनी हुई पुस्तकें संग्रहीत कर रखी हैं। माँ के कमरे में कुल चार तसवीरें लगी हैं, जिनमें मार्क्स और बुद्ध की तसवीर के साथ-साथ मेरे पिता जी की शादी की तसवीर भी है, जिस पर सीता ने एक हरे रंग के रेशमी कपड़े का पर्दा डाल रखा है।

"पिता जी की अनुपस्थिति में, हम प्रायः उस कमरे को खोल कर साफ़ कर देते हैं। सीता प्रायः मेरे माता-पिता जी की तसवीर नहीं छूती और जब मैं उस कमरे को साफ़ करते-करते उसके पर्दे को हटा कर देखती हूँ, तो माँ का कोमल, पतला, किन्तु प्रतिभापूर्ण चेहरा, कान के अगल-बगल की काँपती हुई टेढ़ी लटें और लम्बी, किन्तु पतली आँखों की श्रद्धापूर्ण गहराई, मेरे मन को अनायास ही खींच लेती है। मैं कभी-कभी

बेचैन हो कर उसे देखते देखते खो जाती हूँ, पर सीता न जाने क्यों ऐसे अवसरों पर मुझसे सहानुभूति नहीं प्रकट करती। लगता है, उसके हवा में तेजी से उड़ने वाले होठों पर, सीसे का-सा भारीपन आ बैठता है, और वह अनदेखे ही बाहर चली जाती है।

"इस बार, जब पिता जी की ग़ैरहाज़िरी में मैंने माँ का कमरा खोला, तो खोलते ही मैंने उस तसवीर का पर्दा हटा दिया और तसवीर देखने लगी। एकाएक सीता कमरे को साफ़ करते-करते रुक गयी। मैंने देखा—उसकी सारी खुशी, उसका सारा आनन्द, क्षण ही भर में उड़ गया है, और वह पेड़ से टूटी हुई लतिका की भाँति उदास हो गयी है। सीता के पास जा कर, मैंने उसके सर पर हाथ रखते हुए, उसकी बाँहों में हाथ डाल कर उसे उठा लिया और कहने लगी—

'आखिर तू मेरी माँ के बारे में बात क्यों नहीं करती सीता! क्या बात है, मेरी अच्छी माँ! मुझे बताओ! रह-रह कर मुझे लगता है, जैसे वह आलोक की देवी थी और पिता जी उसको बहुत चाहते थे, इसी से तो माँ के मरने के बाद से, उनके जीवन में इतनी एकाग्रता आ गयी है। बताओ सीता! मुझे बताओ!'

"सीता की आँखों में एक दूर का प्रकाश मुखरित हो उठा और उसकी लम्बी, पतली बरौनियों के किनारे पानी की एक पतली धार चमक उठी। उसने आँखें उठा कर उस तसवीर को देखा और थमे हुए आँसू अबाध गति से फूट पड़े।

'सचमुच वह देवी थीं....सचमुच....'—वह स्फुट स्वरों में कई बार बुदबुदायी, और मुझे बाँहों में कस कर, फफक-फफक कर रोने लगी। फिर एकाएक अपनी सिसकियों को रोकते हुए उसने कहा, 'उसे ढँक दो बिटिया! मैं उस तसवीर को नहीं देखना चाहती!' और अलग हो कर धीरे-धीरे कमरे से बाहर चली गयी। बगल के चित्र-कार्नर से उसने एक बड़ा-सा लिफ़ाफ़ा निकाला और मुझे बुला कर उसमें रखी तसवीरें

दिखाने लगी। उसमें माँ की सैकड़ों तसवीरें थीं—सभी बड़ी मोहक और सादी—जिनमें प्रायः माँ कुछ काम करती दिखाई पड़ती थी। जब मैंने तरतीब से उन चित्रों को देखना शुरू किया, तो मुझे माँ की प्यारी ज़िन्दगी के एक-एक क्षण का पता चलने लगा। उसकी रुचि, उसकी प्रवृत्तियाँ, उसकी रहन-सहन, एक-एक करके मेरी आँखों के सामने नाचने लगीं। ग्रूप-फ़ोटोग्राफ़ में पिता जी के साथ प्रायः एक और सज्जन दीख पड़ते थे, जिनकी अनेक तसवीरें उस घर में लगी थीं। मैंने सीता से पूछा कि यह कौन महाशय हैं, तो वह झुँझला उठी और उसने उन तसवीरों को निकाल-निकाल कर अलग कर दिया।

"फिर सीता ने एक तसवीर निकाली, जिस पर माता जी उसकी चोटी ठीक करती हुई कुर्सी पर बैठी थीं और सीता उनके दोनों पैरों से सटी हुई फर्श पर बैठी थी। सीता उसे देर तक देखती रही और मैं सोचने लगी, सीता इसी को याद करके तो इतनी दुखी नहीं हो उठती? मैंने झुँझला कर चित्र दूर करते हुए कहा, 'सीता! कुछ बताओगी भी या तुम मुझे अंधकार की इन काली परतों में लपेट कर मार डालना चाहती हो? सच कहती हूँ सीता! तुम्हारा यह रहस्य-भरा व्यवहार मुझे रह-रह कर कसकता है—जैसे कोई बार-बार सुई चुभो कर मुझे मार डालना चाहता हो, पर रुक-रुक कर मेरा तड़फना भी देखना चाहता हो! सीता फिर भी चुप रही।

"शाम को हम दोनों घूमने निकले, तो दूर तक आकाश में सिन्दूरी रंग बिखर गया था और धूप की आख़िरी किरणें, टहनियों की ऊपरी नोकों के समानान्तर, दूर को भागती हुई नज़र आने लगी थीं। घाट पर नन्हें-नन्हें बाँस के छातों में, तथा अगल-बगल स्त्री-पुरुष बैठे थे। हम लोग ख़ामोशी से आगे बढ़ गये। कगार के नीचे, पानी के किनारे-किनारे पगडंडियों पर चलते-चलते रेलवे पुल के नीचे से गुज़र कर ज्यों ही तराई की समतल चौड़ी ज़मीन पर पहुँचे, हमें गायों-बछड़ों का एक

झुंड मिल गया। उसके दो चरवाहे, जिनमें एक लड़का और एक लड़की थी, एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखे, गाते चले जा रहे थे।

—मैं तो राजा जल की मछरिया, तुम धीवर के लड़िका; झमकि जाल डारत काहे नाहीं।

"सीता मुस्करायी, और मेरी तरफ़ घूम कर कहने लगी, 'जिन्दगी का यह भी एक स्वर है, जिसमें कितनी स्वाभाविकता और ईमानदारी है। पर इन्हें भी इनके खोखले और आस्थाहीन माँ-बाप साथ नहीं रहने देंगे।' सीता फिर चिढ़ गयी। पर मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और अपनी माँ की बात ही सोचती रही। फिर वह कहने लगी, 'मैं जानती हूँ, तू मुझसे क्या चाहती है, पर यह भी जान लो कि यदि मैंने तुम्हारी इच्छाएँ पूरी कर दीं, तो तुम मुझे देख भी नहीं सकोगी। पर मैं तुम्हें बताऊँगी, ज़रूर बताऊँगी, मेरी बच्ची!'—और उसने मेरे हाथों को अपने हाथों में कस लिया।

"मैंने खाना खाने से इन्कार कर दिया था, इसलिए सीता ने उस दिन चौका नहीं जलाया और सीधे अपने कमरे में जा कर, उसे अंदर से बंद कर लिया। देर तक न जाने क्या करती रही। फिर एक सफ़ेद खद्दर की धोती पहन कर निकली और कमरे में आकर इधर-उधर चक्कर काटने लगी। उसने एकाएक दोनों हाथों से पकड़ कर मेरा माथा ऊँचा किया और उसे चूम लिया। उसकी मुखाकृति पर एक गहरे, किन्तु मज़बूत स्नेह के भाव उभर आये, आवाज़ भर आयी और वह कमरे की बत्ती बुझा कर कहने लगी, 'वासवी, बत्ती मैंने इसलिए बुझा दी कि उजाले में तुम मेरा मुख देख सकती!' और फर्श पर बैठ कर कहने लगी—

'तुम्हारी माँ का आदेश था कि मैं सत्रह वर्ष तक इस घर को छोड़ कर कहीं न जाऊँ, और इस लंबी अवधि को मैंने घुट-घुट कर इस घर की काली दीवारों में काट दिया है। मैं भूखों मर सकती थी, मैं सड़क पर काम करके रह सकती थी पर इस घर में रहना मुझे असहनीय था,

लेकिन मैं रही—वह समय अब पूरा हो गया है। इसके पहले कि मैं यहाँ से चली जाऊँ, मैं तुम्हें सब बता के जाना चाहती हूँ। तुम दुखी न हो!' मेरी आँखों में अनायास ही आँसू छलछला आये।

'तुम्हारी माँ रतनपुर के मशहूर प्रोफ़ेसर डा० रावेन्द्रनाथ की एकमात्र पुत्री थीं, जिन्होंने अपना सारा जीवन कलकत्ते में बिताया था। प्रोफ़ेसर ने अपने जीवन में ही अपनी बच्ची को भाषा, विज्ञान, नृत्य और संगीत की ऊँची शिक्षा दी थी। इतना ही नहीं, उन्हें स्त्री के पूर्ण स्वातंत्र्य में बड़ा विश्वास था। शायद वे समझते थे कि तुम्हारी माँ, (मृणालिनी) स्वयं अपना पति चुन लेंगी पर एकाएक हार्ट-फ़ेल हो जाने से उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी पत्नी ने मृणालिनी के साथ काशी आ कर रहने का निश्चय किया, और यहीं 'अस्सी' पर एक मकान ले कर रहने लगीं। उन्होंने गुलजारीलाल के पुत्र, रतनलाल (तुम्हारे पिता) से मृणालिनी की शादी कर दी। उस समय तुम्हारे पिता अपनी विदेश-यात्रा से वापस आ चुके थे।

'शादी के बाद तुम्हारी माँ ने इस घर में एक आदर्श गृहस्थी खड़ी की। उनकी पढ़ाई-लिखाई और संगीत यहाँ भी चलते रहे। उन्हें ख्याल था कि शायद पति इन चीज़ों को बुरा मानें, पर रतनलाल जी अपनी सारी शिक्षा के बावजूद भी व्यापारी ही थे। हाँ, विदेश ने उन्हें कुछ नये शौक़ दे दिये थे—काफ़ी-हाउस में बैठना, शराब पीना और रात को देर से घर लौटना इत्यादि। कभी-कभी वह कम उमर के लड़कों को ले कर घर लौटते थे और बातें करते-करते सो जाते थे।

'तुम्हारी माँ ने उन्हें बहुत सुधार लिया था, पर कभी-कभी उस लड़के का नाम ले कर वे बहुत दुखी हो जाते थे, जिसकी कई तसवीरें तुमने कमरे में देखी हैं। कहा जाता है कि सेठ जी ने स्वयं रुपया दे कर उसे विदेश यात्रा के लिए भेजा था। उस लड़के के, बड़े लंबे-लंबे पत्र भी आते थे, जिन्हें वे बड़ी चाह से पढ़ कर तुम्हारी माँ का सुनाया करते

थे। वह तुम्हारे पिता जी से केवल दो वर्ष छोटा था। प्रायः कहते—मृणालिनी, उस लड़के के बिना तो जीवन की सूना लगता है। वह बड़ा भला आदमी है, तुम्हें माँ की तरह मानेगा। प्रायः तुम्हें पत्रों में पूछा करता है।

'तुम्हारी माँ को यह बात अच्छी नहीं लगती थी और उनके जीवन पर फैली कोमल, कलात्मक भावों की जाली एक अजीब-सी आसन्न शंका से टूट जाती—वे उदासीन हो जातीं।'

"सीता कहते-कहते रुक गयी और कमरे के अँधेरे में रोशनदान से आती हुई बिजली की रोशनी को देखते-देखते अपनी अनुभूतियों में खो गयी।

"मैंने उतावली से कहा, 'बताओ सीता!' और झुक कर उसके सिर को खींच कर पलंग की पाटी से सटा लिया। उसने हाथ बढ़ा कर अपनी फैली हुई अँगुलियों से मेरा चेहरा ढक लिया, पर उसकी अंगुलियाँ काँपती रहीं। उसने कहना शुरू किया—

'तुम्हारे पैदा होने के एक वर्ष बाद उनका वह साथी विदेश से लौटा। उसी साल मैं इस घर में आयी थी। तुम्हारे पिता जी प्रायः उस लड़के के साथ दूसरे कमरे में सोया करते थे, और माँ सोने के कमरे में देर तक उनका इन्तजार करते-करते थक कर सो जाती थीं। धीरे-धीरे उनका हँसमुख सुहावना स्वभाव चिड़चिड़ा होने लगा। चेहरे पर एक अजीब-सी थकान और उदासीनता छाने लगी। मैंने कई बार उनसे पूछा—आखिर क्या बात है दीदी! पर वे टालती गयीं। लेकिन इतना तो ज़ाहिर ही था कि वे तुम्हारे पिता जी और उस लड़के का सम्बन्ध बिल्कुल पसंद नहीं करती थीं।'

'एक दिन रात की बात है, जब तुम्हारे पिता जी अपने मित्र के साथ एक बजे रात घर पहुँचे, और बाहर ही के कमरे में बैठे। जब मैं खाना ले कर गयी तो कमरे में अजीब-सी बदबू भरी थी। उनकी बातों में एक अपूर्व हल्कापन मुझे दिखाई पड़ा। जब मैं खाना दे रही थी, तो

उनके मित्र ने उनकी ओर देखा और दोनों के होठों पर एक अत्यन्त अशिष्ट और भद्दी मुस्कान छा गयी। जब मैं बाहर आने लगी, तो उनके मित्र ने लड़खड़ाती ज़बान से पुकारा—सी....ता! सी....ता! और मैं लौट पड़ी। मेरा मन घृणा से भर गया था और गुस्से से मेरा सारा शरीर काँपने लगा था, पर उसी समय तुम्हारी माँ ने, जो कमरे के बाहर से सारी बातें सुन रहीं थीं मुझे पुकारा, और कहा—तुम जा कर सो रहो! मैं उनकी बात समझ गयी, और कमरे में जा कर सो गयी।

'वह बड़ी भयानक रात थी वासवी! लगता था उस कमरे के अंधकार में साँसें घुट जाएँगी, पर मैं न जाने कब सो गयी। सबेरे उठ कर जब तुम्हें लेने गयी, तो तुम्हारी माँ की हालत अजीब थी। दोनों घुटनों के बीच, सर गाड़े, वे फफक फफक कर रो रही थीं। मैंने कई बार पुकारा—दीदी! दीदी!! और झुक कर उनका सर थाम कर ऊँचा करने लगी, पर वे देर तक ऐसे ही रोती रहीं। जब मैंने बहुत ज़िद की तो उन्होंने सिर ऊपर करते हुए कहा—आरती का दीपक बुझ गया सीता! बुझ गया! गंगा का पानी इतना गंदला हो गया कि तुम उसे अब छू भी नहीं सकती। दूर हट जाओ! मेरी बच्ची को मुझसे दूर उठा ले जाओ! मैं उसकी माँ नहीं हूँ और थोड़ी देर बाद, अपनी भौंहों और माथे पर बल देते हुए उन्होंने कहा—इसकी माँ तो मर गयी सीता! हाँ, सच मानो, आज ही रात में, आज ही रात में, इसी अँधेरे में, उसे पिशाच उठा ले गये! वह मरती नहीं, उसका तो जीने में विश्वास था, पर पिशाचों ने धोखे से उसे मारा। वे जानते थे यह मरेंगी नहीं, इसीलिए तो! और थोड़ी देर एकाएक चुप रहने के बाद वे चिल्ला उठीं—सीताऽ सीताऽ, मुझे बचाओ! फिर उनके सूखे होंठ एक दूसरे से चिपक गये, उनकी आँखों की रोशनी मंद पड़ने लगी। मैंने बढ़ कर उन्हें सँभाल लिया, वे धीरे-धीरे कुछ बोलती रहीं। फिर एकाएक कमरे में नज़र दौड़ा कर कहने लगीं—देखो वे पिशाच हँस रहे हैं—मेरी लाचारी पर, मेरी हीनता पर, और चाहते हैं—वे हँसते रहें और मैं बराबर उनकी हँसी में घुल-घुल कर मरती रहूँ। नहीं होगा, ऐसा नहीं

होगा सीता ! तुम भाग जाओ इस कमरे से ! देखो, यह तुम्हारी बच्ची है ! इसे सँभालना, इसे ले कर उन पिशाचों से लड़ना ! मैं जानती हूँ, तुम हारोगी नहीं। और वे उठ कर तुम्हें चूमने को बढ़ीं, पर उनके पैर थरथराने लगे, उनके हाथ काँपने लगे, और वे दोनों हाथों से अपना सिर थाम कर फर्श पर बैठ गयीं और उसी दिन के बाद की आने वाली रात....,कहते-कहते सीता रुक गयी।

"मेरी साँसें बँध गयी थीं। सारा कमरा, सीता, अंधकार, जैसे इतनी तेज़ी से चक्कर काट रहे थे कि मेरा मुँह खोलना भी नामुमकिन हो गया था। सीता कमरे में चक्कर लगाने लगी थी, और उसकी बातें रह-रह कर कानों में पड़ती थीं, 'स्त्री सहारा चाहती है, स्त्री मुहब्बत चाहती है, स्त्री एक पुरुष चाहती है, पर जिसे चाहती है, उसकी ही बन कर जीना चाहती है—चाहे वह उसका विवाहित पति हो, चाहे मनचाहा प्रेमी, पर उसके आगे, उसी के हाथों अपनी अस्मत लुटती देख कर वह मर जाती है, टूट जाती है....।' न जाने कब सीता की आवाज़ बंद हो गयी—वह चुप हो गयी पर तारीकी बढ़ गयी, अंधकार सिमट कर कमरे में घना हो गया, दीवारें सिकुड़ कर एक दूसरे से सट गयीं, पर एक आवाज़, अत्यन्त मीठी और करुण, रह-रह कर कानों में गूँजती रही—'इसकी माँ तो मर गयी सीता ! हाँ, सच मानो, आज ही रात में, इसी अँधेरे में, पिशाच उसे उठा ले गये ! वह मरती नहीं—उसका तो हँसी में, कला में, साहित्य में और सेवा में विश्वास था, पर पिशाचों ने उसे धोखे से मारा।'

"और मेरी आस्थाएँ, मेरा मन, मेरे विश्वास जैसे पागल की तरह उन्मुक्त हो कर इन दीवारों इन तसवीरों, और समाज की इन बिखरी, विकृत आकृतियों से पूछते हैं, 'आखिर मेरी माँ क्यों मरी ? आखिर वह तुमसे क्या चाहती थी ?' पर कुछ भी जवाब नहीं मिलता, और सीता का उस रात्रि का स्वर—वह जीना चाहती थी....जीना, मेरे कानों में गूँजा करता है !"

नीम की टहनी

सूरज डूबते ही, सारा गाँव डाइनों के काले लहँगे में उलझ कर बेहोश हो जाता है। हवा का झोंका अपनी खूँखार अँगुलियों से, खपरैल के घरों तथा फूस की झोपड़ियों को रह-रह कर छूता है, और वे दुबक कर, एक भयानक खामोशी में डूब जाती हैं।

सिवाँन में सियारों की हुआँ ऽ हुआँऽऽ....और गाँव में कुत्तों की भोंऽ भोंऽऽ—लोग कानों में अँगुलियाँ डाल लेते।

—कितने अपसकुन साथ-साथ हो रहे हैं। नगई की लड़की तो अब-तब हुई है—महारानी की बड़ी डाली है, बेचारे के दो-दो जवान बेटे माई की गोदी में सो गये।

—बड़ा अनरथ हो रहा है भाई! रामजस की मेहरारू को भी बड़ा तेज बुखार है। तीनों बच्चे बेहोश पड़े हैं। अब क्या होगा भला? माली भी तो लगा लिया था, बेचारे ने—पूजा-आरजा करायी, लेकिन बच्चों ने अभी तक आँखें न खोलीं।

—यह पचरा भी तो शायद उन्हीं के घर हो रहा है—किसना भया-तक गीत होता है। मेरा तो रोआँ-रोआँ रह रह कर काँप जाता है।

ठकुराइन का तो सब्र टूट गया। बार-बार बखरी के दरवाज़े पर आतीं, और लौट कर फिर घर में जातीं, पर उनका मन जैसे उचट-सा गया था। इतनी रात बीत गयी, पर कुमार नहीं लौटा—कहाँ घूम रहा है पागल, इतनी अँधेरी रात में! अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? माता-भवानी की बात, न जाने कब मरजी बिगड़ जाए माई:जी की? वे घबरा कर उठीं, रास्ते में सोये हुए कुत्ते पर पैर पड़ गया, वह भोंकने लगा, वे डर गयीं, और दालान में बँधी हुई चितकबरी मेंऽऽ मेंऽऽ करने

लगी। वे क्षण भर रुकी ही थीं कि दरवाज़े पर साँकल की आवाज़ हुई, उन्होंने दौड़ कर दरवाज़ा खोल दिया।

"कुमार!" माँ ने पुकारा, और उसे अपने सीने से सटा लिया। "बेटा, तू इतनी रात तक कहाँ रुक गया! जानता नहीं, अब कुल ले-देकर तू ही तो मेरी आँखों की रोशनी है। तू चला जाता है, तो लगता है, सारे घर में अँधेरा हो गया है।"

कुमार कुछ नहीं बोला। माँ की आँखों का अंधकार, उसके आगे बिखर गया। उसने देखा, सामने दीवार पर जलती हुई डिभरी की लौ, मद्धिम हो रही थी।

"कहाँ रह गया था इतनी रात तक?"

"पियारी के यहाँ।" कुमार ने बड़ी उदास आवाज़ में कहा।

"तुम इतने थके क्यों हो?" माँ ने सहसा भौचक्की आवाज़ में कहा, जैसे उसे कोई झटका-सा लग गया हो। वह कुमार के सिर को गोद में ले कर धीरे-धीरे सहलाने लगी।

"क्या बात है बेटा! कैसी तबीयत है?"

इसी समय, दूर सियारिन रो पड़ी और कुमार चौंक पड़ा।

माँ ने फिर पूछा, "क्या बात है बेटा?"

"माँ, उस महरानी देवी वाली नीम की टहनियाँ, महराजिन बुआ अलावा, दूसरा कोई नहीं तोड़ सकता?" कुमार ने बड़ी थकी आवाज़ में कहा।

"किसी को महरानी निकल आयी हैं क्या बेटा?"

"हाँ माँ पियारी की हालत बहुत ख़राब है। दो दिन हुए, उसे होश ह ' नहीं हो रहा है। चेचक के दाने, सारे शरीर में फैल कर मिल

गये हैं। लोग कहते हैं, अब तो महरानी वाली नीम की टहनियों की ही आशा है....पर....पर....माँ !"

माँ का सारा शरीर काँप उठा। उसने कुमार के सिर को अपनी गोदी में दबा लिया। "और तू इतनी रात तक वहीं बैठा रहता है.... जानता है ?"

"....जानता हूँ माँ, कि चेचक छूत की बीमारी है....पर माँ, नीम की टहनियाँ...."

"जाना मत उसके पास, वर्ना मैं परान दे दूँगी। कुमार, उस नीम की भी एक अजीब कहानी है। उसी साल की बात है, जिस साल तू पैदा हुआ था, और यह महराजिन बुआ भी अपने पति के साथ गाँव आयी थीं—महरानी वाली नीम की पूजा के लिए इस गाँव की चलन है कि लड़कियाँ शादी के बाद दूल्हे के साथ, महरानी वाली नीम की पूजा करने आती हैं।" कुमार का मन नीम की टहनियों में अटक गया।

—देख री पियारी, अब मैं यहाँ नहीं आया करूँगा।

—नहीं आएगा, सच !

—सच !

—तो ले, मैं टहनी तोड़ती हूँ।

—बाप रे ! तुम्हें मेरी कसम।

और दौड़ कर कुमार पियारी के दोनों कान पकड़ कर, झकझोर देता।

—पगली तू मर जाएगी तो मेरा क्या होगा ? अच्छा मैं भी एक टहनी तोड़ लूँगा।

—इससे कुछ नहीं होगा कुमार। जो पहले तोड़ता है वही मरता है

—नहीं पियारी, सच मानो अब तुम्हारी माँ, तुम्हें....

—बिगड़ेगी, यही न, तो इससे तुम्हें क्या ? पियारी हँसते हुए कहती, और अपनी धँवरी को उसी नीम की छाया में ला कर, खड़ी कर देती, और अपने हाथ से, गाय का दूध दूह कर कुमार को पिलाती। धीरे-धीरे जब शाम हो जाती और नीम की पत्तियों पर सुनहला रंग चढ़ जाता, तो कुमार और पियारी अपने घरों की ओर जाते।

माँ कहती जा रही थी....

"महराजिन बुआ का पति बड़ा पढ़ा-लिखा था बेटा ! उसे इस धरम-करम के ढकोसले में विश्वास न था। बुआ ने उससे कह रक्खा था, कि नीम की पत्तियाँ मत छूना, पर वह माना नहीं, और हँसते हँसते एक टहनी तोड़ ही तो ली। गाँव की और बहुत-सी औरतें थीं— सब की आँखें टँग गयीं और बुआ तो वहीं रोने लगीं। लौट कर लड़के को जो जोर का बुखार हुआ, तो महरानी ने उसे उठा ही लिया, और तभी से बुआ लगातार नीम की टहनियाँ तोड़ती रहीं और उन्हें कुछ न हुआ। हाँ, अब वही टहनियाँ, जो बुआ तोड़ती हैं, मरते हुए लोगों के ऊपर से महारनी की छाया उठा ले जाती हैं, पर वे भी तो तीर्थ-यात्रा पर गयी हुई हैं। दूसरा कौन है, जो नीम की टहनियाँ तोड़े।" कहते-कहते माँ की आँखें झँप गयीं।

कुमार की याद उतरा आयी—

—कुमार ! पियारी ने उसकी अँगुली पकड़ कर खींची। मान जाओ मेरे राजकुमार ! जल्दी उठो ! देखो, नहीं तो माँ जग जाएगी। चलो, आज बउलिया में नहा आवें। हाँ रे, वहाँ खूब बड़ी-बड़ी कुइन के फूल हैं, मैं तुम्हें गाला पहनाऊँगी !

कुमार और पियारी सुबह की मिटती स्याही में बाउली पर पहुँच जाते।

—वह देख रहे हो फूल ! पियारी अपनी बड़ी-बड़ी आँखो को नचा कर कहती।

—अरे बाप रे ! जानती हो, वहाँ कितना पानी है। हाथी डाल दो तो पता न चले। मैं तो नहीं जाता। कुमार कुछ और किनारे आ कर खड़ा हो जाता।

—इस फूल के लिए मरना भी कितना अच्छा होगा कुमार, जरा आँखें तो मूँदो !

और पियारी तैर कर गढ़े में से फूल उखाड़ लाती, फिर जल्दी-जल्दी उसकी नड़ों को गूँथ कर कुमार को पहनाते हुए कहती—वाह रे मेरे कायर राजकुमार !

—कायर....कायर....मैं कायर ! कुमार के मन में एक स्फूर्ति दौड़ गयी। अँधेरा सिमट कर और घना हो गया था, पर रात की काली अँगुलियों में एक थिरकन आ गयी थी। एकाएक दूर से किसी स्त्री के रोने की आवाज़ आयी और बाहर कुत्ते भूँकने लगे। रात की भयावनी लटों में एक तेज़ सरसराहट हुई, और अनेक खूँख़ार परछाइयाँ, एक बार नाच कर, गाँव की छाती पर अट्टहास कर उठीं। कुमार उठ खड़ा हुआ, दरवाज़े पर गया, किवाड़ खोल कर बाहर खड़ा हो गया। आवाज़ पियारी के घर से ही आ रही थी। शायद पियारी की हालत खराब है....अब तो नीम की टहनियों के सिवा....और कुमार के पाँव बढ़े, पर वह एकाएक रुक गया, जैसे कोई पकड़ कर उसे पीछे खींचता हो। उसने लौट कर देखा, पर माँ का चेहरा अँधेरे में घुल गया था। "नहीं माँ....नहीं ....मैं नहीं रुकूँगा, मुझे माफ़ करना !" और वह बेतहाशा दौड़ पड़ा।

जब पियारी के घर पहुँचा, तो नीम की एक टहनी उसके हाथ में थी। घर के लोग डर गये, "किस नीम की टहनी है। कुमार ने

महरानी वाली नीम की टहनी तो नहीं तोड़ी ?" पर वह कुछ नहीं बोला और धीरे-धीरे नीम की पत्तियों से, पियारी की देह सहलाने लगा। कुछ देर के बाद पियारी ने धीरे से आँखें खोलीं और झिपका कर, फिर मूँद लीं। कुमार ने पुकारा, "पियारी !"

और पियारी ने आँखें खोल दीं।

टूटती हुई आवाज़ निकली, "तुम फिर आ गये....मना किया था न ! और....यह नीम की टहनी ?"

"हाँ—महरानी वाली नीम की है पियारी ! तुम अच्छी हो जाओगी।"

"कुमार !" पियारी के मुँह से जैसे कोई कराह निकल पड़ी हो। और उसकी आँखें, किसी भयानक आशंका से बंद हो गयीं। हाँ, आँसू के बड़े-बड़े दो बूँद उसकी आँखों से निकल कर बिस्तर पर लुढ़क पड़े।

दूसरे दिन से पियारी को अच्छा होने लगा, पर उसके हाथ की नीम की टहनी की पत्तियाँ धीरे-धीरे सूखती गयीं, और एक दिन हवा का ऐसा झोंका आया, कि उसकी सारी पत्तियाँ खड़ खड़ा कर झर पड़ीं। पियारी चिल्ला उठी, "कुमारऽ....कुमारऽऽ....कुमारऽऽऽ"

इस समय, उस महरानी देवी वाली नीम के नीचे, महराजिन बुआ की नहीं, पियारी की झोपड़ी है। कहते हैं, चेचक के मरते हुए मरीज़ को भी यदि वह नीम की टहनी से सहला दे, तो आराम हो जाता है।

सवरइया

"सवरइया रोज रात को खूँटे से छुड़ा लेता है बैजू की माँ!" बूढ़ी महराजिन ने दरवाज़े के चौखटे पर हाथ टिका लिया और घर के सामने एक पगहे में बँधे बैल को एकटक देखने लगीं, जो नाथ में कई फेर लपेट कर खूँटे से जकड़ा हुआ था और जिसके नथुनों तथा मुँह से गाज बह रहा था। सवरइया का रोआँ कनकना उठा। उसने बड़ी मुश्किल से गर्दन टेढ़ी करके दरवाज़े की तरफ़ देखा और एक नन्हें बछरू की तरह डकारने लगा। महराजिन का जी भर आया, उनकी आँखों का सीमित मोह जैसे किसी माध्यम का सहारा पा कर मचल उठा।

"देख री, बैजू की माँ, तू इसे ठीक से तो बाँध दे; मैं कुछ खाने को ले आऊँ।" और महराजिन लौट कर घर में चली गयीं। कई मटकों में इधर-उधर हाथ डाला, जाँत वाले घर का कोना-कोना देख आयीं, पर कुछ न मिला। एकाएक उन्हें बीहन के लिए रखे हुए जौ की याद आ गयी। दौड़ कर खाता वाले घर में गयीं और थोड़ा भूसा और जौ ले आयीं।

बैजू की माँ ने कहा, "बड़ा मरकहा है, दीदी। तभी तो इसकी यह दुर्दशा हो रही है।"

महराजिन के माथे पर बल पड़ गये, जैसे अचानक कोई आग की चिनगी उनके पाँव तले आ गयी हो। एक गहरी झनझनाहट के साथ उनके मन में क्रोध और दुख उमड़ आया। "क्यों न दुर्दशा होगी, बैजू की माँ?" उन्होंने अपने को सँभालते हुए कहा, "जिसका गुसैयाँ ही इस धरती से उठ गया, जिसकी प्यारी दुलारी बिटिया...." महराजिन की आँखों के आगे पानी की दीवार खड़ी हो गयी।

"कन्नो इसे कितना मानती थी ! जब मैं उस साल मैके गयी तो बापू इसे नया-नया मेले से खरीद कर लाये थे। कैसी सवराई थी इसकी पीठ पर, जैसे कोई मखमली बिछावन हो ! और जी मचल उठता था इसकी पीठ पर हाथ फेरने को। लम्बे-लम्बे पतले, सुडौल पैर, जैसे किसी साँचे में गढ़ कर निकाले गये हों, या किसी बड़े होशियार कारीगर ने बड़ी मेहनत से तराशा हो। कन्नो इसके पीछे लगी रहती थी रात-दिन। इसे चाचा कहती थी। और यह भी तो कितना अल्हड़ था ! यदि छुड़ा लेता तो कन्नो के पीछे-पीछे सारा गाँव घूम आता, बस्तियों में घुस जाता।

"एक दिन कन्नो स्कूल चली गयी, तो इसने खूँटे से छुड़ा लिया। सारा गाँव जुटा, पर किसी की पकड़ में न आया। आखिर कन्नो स्कूल से लायी गयी, और आते ही उसने पुकारा, "चाचा ! ओ मेरे चाचा ! आओ !" यह दौड़ता हुआ उसके पास पहुँच गया और उसके हाथ-पैर चाटने लगा।

"और जब मैं चलने को हुई, तो बाबू ने इसे विदाई में दे दिया !"

महराजिन का ध्यान एकाएक अपने पैरों की तरफ़ चला गया। नाखून बढ़ गये थे और पैरों पर बेतरह झूरियाँ पड़ गयी थीं। "उँह !" वे झुँझला पड़ीं, "आखिर विधवा के पैरों की क्या गिनती ? किसके लिए सिंगार-बनाव, जब वे ही नहीं रहे तो...." बीच ही में सवरइया भूसा-दाना साफ़ कर चुका था और फिर नन्हें बछरू की तरह डकारने लगा था। महराजिन धीरे-धीरे बढ़ीं, उसकी गर्दन और डील पर हाथ फेरने लगीं। सवरइया ने गर्दन और झुका ली और महराजिन का पैर चाटने लगा।

गोसैयाँ के ममता-भरे हाथों ने उसका पशुत्व छीन लिया। बैजू की माई ने कहा, "जानवर भी अपना-पराया चीन्हते हैं, बहिनी ! मैं गयी, तो कैसा मारने दौड़ा था !"

"बैजू की माँ! जब मैं इसे ले कर मैंके से आयी थी, तो कन्नो के बापू कितने प्रसन्न हुए थे, जानती हो? इसके लिए पक्की चन्नी बनी थी। नाथ-पगहा सब नया-नया बना और गुलाबी रंग में रँगा गया था। खूँटे पर तपावन दिया गया। दो ग़रीबों को भोजन दिया गया। ज़रा-सी इसकी तबियत भारी हुई कि वे रात-रात भर खूँटा पकड़े बिता देते थे। एक दिन मैंने डाँटा, तो कहने लगे, "बिगड़ो नहीं, कन्नो की माँ, यह तुम्हारी भेंट और कन्नो बिटिया का दुलार है न!" महराजिन की आँखें भर आयीं। उन्होंने जल्दी-जल्दी आँखों का पानी झिटक दिया और देखा कि सवरइया बैठ कर उनके पाँवों पर सिर रखे सुस्त पड़ा है।

जेठ का महीना, रात की जलन का कोई ठिकाना नहीं था। पेड़-पालव सब उदास चुप खड़े थे। सिवान में कहीं भी हरियाली के दर्शन नहीं होते थे। रात धीरे-धीरे बढ़ती गयी और धीरे-धीरे हवा की गर्मी भी कुछ कम होती गयी। चाँदनी निखर कर सूखी-सफ़ेद मिट्टी से चिपक गयी थी। मिट्टी का ज़र्रा-ज़र्रा एक अजीब-सी गोराई से रँग उठा था। किसानों ने करवटें बदलना बंद कर दिया था और नींद की परी ने सब की आँखों को अपने मासूम परों से ढँक लिया था। सवरइया ने पूँछ हिलायी, इधर-उधर पीट पर बैठी मक्खियों को उड़ाया और एक ऐसे झटके से उठा कि खूँटा ऊपर आ गया। उसने गर्दन सीधी की, इधर-उधर देखा, कहीं भी हरियाली का नाम नहीं। बगल में देखा, पट्टीदार की चरनी पर बैठे आठों बैल आराम से पगुरी कर रहे थे और जमुना पारी अपने नन्हें घुँघरुओं की मधुर आवाज़ के साथ चभक-चभक कर खा रही थी।

सवरइया का मन डोल गया, "चरनी में जरूर दाना-खरी होगी! और गइया।" उसी को सूँघने भर के लिए उसके ऊपर कितनी लाठियाँ पड़ी थीं! और वह बाँध कर पौंड-घर पहुँचाया गया था। मालकिन

कितनी नाराज़ थीं। बेचारी ने उधार रुपये ले कर वहाँ से छुड़ाया था। और उसे देख देख कर कितनी रोयी थीं, कितना समझाया था .. "बड़ा बदमाश है रे तू...नहीं जानता, महराज के मरने के बाद मुझे जगह-जमीन से महरूम करके इन सबों ने अलग कर दिया, केवल पाँच ही बीघे तो दिये हैं। और तू....तेरे ऊपर तो बड़ी आँख थी इन कमीनों की। पर वह तो कहो गाँव के पंचों को, गोटी पड़ी और गोटी में कन्नो के मोह ने तुझे जीत लिया। पगले, अब कभी वहाँ न जाना, नहीं तो जान ले लेंगे। बार-बार तुझे माँगते हैं। रुपया देने की कहते हैं। पर तुझे नहीं दूँगी, मेरे लाल !"

और महराजिन ने हल्दी-गुड़ पिलाया था, तेल और अरउन सींगों में लगाया और गरम पानी और इमली की पत्ती से मेरा पैर धोती रही थीं !

सवरइया का रोआँ भभर आया। उसने उधर से मुँह फेर लिया और चुपचाप खूँटे पर खड़ा रहा। इतने में जमुनापारी बोली। उसने नाँद में से मुँह निकाला और सवरइया की ओर देखने लगी। सवरइया को लगा कि जमुनापारी उसे बुला रही है। कैसी अच्छी रात है, उसने मुड़ कर गइया की ओर देखा, तो उसके दूध के फेन-से रोएँ को बकुलपंखी चाँदनी सहला रही थी। वह एकटक सवरइया की ओर देख रही थी। उसने अगला पैर हटाया और मुड़ कर दोनों कान हिलाने लगी।

सवरइया धीरे-धीरे उधर बढ़ा। एक बार फिर उसे लाठियों की मार और मालकिन का कहना याद आया और उसके पैर भारी पड़ गये। वह रुक गया। पर जमुनापारी मुड़ी नहीं। एकटक उसे देखती रही। उसने अपनी गर्दन नीचे की और दोनों पैरों के नीचे से झुला कर फिर सीधा करके डकरी और उसकी ओर देखने लगी।

अब सवरइया का रुकना मुश्किल हो गया। वह बढ़ा और एक

ही छलाँग में जमुनापारी के पास पहुँच गया। उसकी दोनों पिछली टाँगों के बीच अपने नथनों से सूँघा और गाय अपनी पूँछ उठा कर खड़ी हो गयी। वह उसके और पास गया और उसके अगल-बगल सूँघते हुए उसके मुँह पर अपनी जीभ फेरने लगा। सवरइया से नाँद से आती हुई खरी की खुशबू को मन से सूँघा और बढ़ कर नाँद में मुँह डाल कर खाने लगा। जमुनापारी उसकी पीठ पेट चाटती रही। जब देर तक उसने नाँद से मुँह नहीं निकाला, तो उसने सवरइया के पेट में सींग डाल कर धक्का दिया और वह पीछे हट गया। फिर वह उसके दोनों पैरों के बीच मुँह डाल कर सूँघने लगी। बगल में दूसरे बैल बँधे थे। महाराज का उतरहवा बड़ा मरकहा था। सवरइया को देखते ही ताव में आ गया और खूँटे से तुड़ा कर उससे भिड़ गया। सवरइया ने नीचे सिर करके ज़ोर लगाया और वह चरनी से जा सटा। उसकी गर्दन मुड़ गयी बहुत बेतुकी और फिर एकाएक उसके पेट में सींग डाल कर उसे उठा कर फेंक दिया। बरधे का पैर पगहे में फँस गया और वह ज़ोर-ज़ोर से डकरने लगा। जमुनापारी ने भी खूँटे से तुड़ा लिया और सवरइया के साथ इधर-उधर कुलाचें भरने लगी।

इतने में लोग जग गये। पट्टीदार के तीनों भाइयों ने बाँस की लाठियाँ उठा लीं और कई लोगों को जगा कर सवरइया को घेरने लगे। पर आज उसका क्या पूछना था, जिस ओर से सिर नीचे करके निकलता मैदान साफ़ हो जाता। एक साथ चार-चार लाठियाँ उसकी पीठ पर पड़तीं, पर वह तनिक भी परवाह न करता। लोगों ने दौड़ कर उतरहवा का पगहा छड़ाया और वह हाँफते हुए उठ खड़ा हुआ। जमुनापारी भी आपे से बाहर थी, जितना ही सवरइया दौड़ता, उतना ही वह; और फिर एकाएक सामने की चरनी को ज़ोर से फाँद कर सवरइया बाहर निकल गया।

पट्टीदारों का सिर झुक गया—"निकल गया साला, नहीं तो आज इसका पैर तोड़ देते।"

दूसरे ने कहा, "जमुनापरिया के पीछे पड़ा है, आज तो उसे भी साथ ले गया....."

तीसरे ने कहा, "किसी तरह मिल जाते बच्चू, तो लोहियवा हर में नाध कर ताल में ऐसा रगड़ते कि भुइयाँ पकड़ लेता।" सवरइया देर तक सिवान में घूमता रहा। जमुनापारी का बच्चा खूँटे में बँधा रह गया था। सिवान में घूमते-घूमते वह बोली, और बच्चा खूँटे पर चिल्लाने लगा। जमुनापारी ने रुक कर सवरइया की ओर देखा। मुँह पास ले जा कर उसकी पीठ पर जीभ फेरी। सवरइया ने उसकी गर्दन के नीचे लटकती हुई झोझ को बड़े दुलार से सहलाया और वह बेसुध हो कर घर की ओर भागी।

महराजिन की खेती-बारी सब चौपट हो गयी। एक तो पाँच बिगहे ज़मीन, दूसरे एक बरधा, बेचारी की हालत बहुत टूट गयी थी। कई लोगों से साझा-बूझा, चलाया, पर निभ नहीं पाया। किसी ने दाना चुरा लिया, तो किसी ने खड़ी फसल ही काट ली। घर में जो अनाज-पानी था, सब धीरे-धीरे खा-पी गयी और गहने भी एक-एक कर बिकते गये। जेठी का समय, मालगुज़ारी का चड़ास लग गया। पियादा बार-बार आया और लौट गया। पट्टीदारों ने उसका कान भरा और उसने तहसील में जा कर वारंट कटवा दिया।

इधर उन्हीं में से एक महाराजिन के पास आया और बड़े प्रेम से बैठ कर कहने लगा, "काकी! काहे नाहक परेशान हो रही हो! अरे सवरइया हमें दे दो, हम दो सौ रुपया दे देंगे। मालगुजारी भी दे दी जाएगी, और भी काम चलेगा!" महराजिन का शरीर काँपने लगा, "इसीलिए आये हो मीठी-मीठी बात करने, जाओ, अपना काम देखो मैया! हम मालगुजारी दे लेंगे!"

जब वह चला गया, तो महराजिन का मन चिन्ता से भर उठा। सोचने लगी, "कन्नो बिटिया को संदेश भेज दें कि अब तुम्हारा चाचा ही बच रहा है। कहो तो बेच कर लगान भर दें। पर लड़की सोचेगी कि माँ इसी बहाने रुपये माँग रही, है! नहीं-नहीं यह नहीं होगा।" और वे आँगन में इधर-उधर घूमने लगीं। फिर सोचने लगीं, "शीशफूल रख दूँ? क्या करूँगी? लेकिन वही तो उनकी निशानी है, तो क्या सवरइया, सवरइया....? नहीं-नहीं, इसे नहीं बेच सकती!" और वे शीशफूल ले कर साव की दूकान में जा बैठीं। कुल पचास रुपये पर बंधक रखना तय हो गया। साव ने कहा, "चाची चलो, हम रुपया दे जाएँगे।"

शाम को जब साव रुपये ले कर आ रहा था, तो रास्ते में पट्टीदार मिल गये, "कहाँ जा रहे हो, महाजन! इतनी बेला?" "पंडिताइन काकी के यहाँ, बेचारी बड़ी परेशान थीं। सुना वारंट कट गया है, कल कुड़की आने वाली है। जा रहा हूँ, कुछ रुपया देने।" महाजन ने चलते-चलते कहा।

पट्टीदार को चटकना लग गया, "आखिर रुपये जुटा ही लिये बूढ़ी ने।" झट-पट दोनों भाइयों ने राय की, सामू भर भी बुलाये गये। सेचनी लुहारिन भी आयी और देखा गया, वह जा कर पंडिताइन से रो-रो कर बातें कर रही थी। बड़ी देर तक बैठी रही और सुख-दुख होता रहा। उठी तो पट्टीदार के कान में कुछ कहती हुई घर चली गयी।

रात गाँव में एकाएक कुहराम मचा। लोग जुटे, तो देखा महराजिन काकी बिलख-बिलख कर रो रही हैं और पट्टीदार तीनों भाई उन्हें समझा रहे हैं, "जाने दो काकी, नाहक क्यों रो रही हो! पचास रुपये ही तो गये! चलो, कल से अपने घर में रहो!" बैजू की माई कहने लगी, "ऐसी चोरी नहीं देखी बाबा कि घर में चोर आये, कुछ हुआ भी नहीं और रुपये ले कर चले गये!"

पट्टीदार ने कहा, "नहीं जानती, आजकल भौंदियों के मारे मरन नहीं है! रात दिन तो यही सूँघा करते हैं। मैंने पचासों बार इनसे कहा कि रुपया-पैसा मेरी तिजोरी में रख दिया करे। अरे भाई, अलग रहने से क्या हुआ, आखिर हैं तो अपनी ही। पर इनको जाने क्या हो गया है!"

बातचीत चल ही रही थी कि तहसील के सिपाही और कुर्क-अमीन आ धमके। लोगों ने हाथों से माथा टेक लिया, "देखो बेचारी को....अरे भाई! विपत आती है, तो अकेले नहीं आती।"

पट्टीदार ने सिपाहियों को अपने दरवाज़े पर बैठाया। कुर्क-अमीन की सेवा-सत्कार की, मिले-जुले, फिर बाद को लोग महराजिन के दरवाज़े पर आये।

पट्टीदार ने कहा, "साहब इस घर की इज़्ज़त बहुत रही है, अभी तक कोई गैर चौखट लाँघ कर अंदर नहीं गया। यही बरधा है, चाहे कुर्क कर लो!"

महराजिन की आँखों में आँसुओं का नाम न था। उन्होंने अपनी पथरायी आँखों से सवरइया को देखा, तो वह पुलिस वालों को देख कर भड़क रहा था।

अमीन ने बैल खूँटे से छुड़वा लिया। महराजिन चुपचाप बैठी रहीं, उठीं तक नहीं।

चौथे दिन देखा गया, सवरइया पट्टीदार की जमुनापारी के बग़ल एक नये पगहे में बँधा है। भूसा-दाना सब है, पर वह नाँद में मुँह नहीं डालता। लोग कहते हैं, नीलाम के पहले यह चार दिन तहसील में रहने के कारण ताव खा गया है। जमुनापारी बार-बार गर्दन हिलाती है, कान फड़फड़ाती है, पर सवरइया की गर्दन नीचे की ओर झुकी हुई है। उसके मुँह से फेंचकुर तथा आँखों से पानी और कींचर आ रहा है।

पान-फूल

"माँ, मैं अकेले बाहल नहीं जाऊँगी। मुझे डल लगता है....ऊँऽ....ऊँऽऽ ....ऊँ....ऽ"

जानकी ने कपड़े पर तेज़ चलती हुई सुई को रोक कर देखा, तो नीली बिदक गयी है और नन्हें-नन्हें गुलाब के फूल-से गालों पर एक बाँह सटा कर दहलीज़ के पाये से सटी-सटी सुफ़ेद धुले फ्राक को चूने में घिस रही है। वह मन ही मन तनिक नाराज़ हुई और उठ कर अपनी नीली के पास तक चली गयी, "तो कहाँ से गढ़ दें दूसरा बच्चा तेरे लिए ? कुल ले-दे कर बड़े जोग-जतन पर तू ही तो एक जनमी, वह भी इस उमिर में। और आस-पास कोई घर भी तो नहीं है !" उसने बच्ची को गोद में उठा कर, उसके फूले-फूले गालों को चूम लिया और कहने लगी, "देख, बाहर रामू होगा, उसे ले ले और बाग के पास वाली फुलवारी में घूम आ !"

नीली जब घर के बाहर निकली, तो पूसी कुतिया के अलावा दरवाज़े पर कोई नहीं था, जो अपनी दोनों अगली टाँगों पर गर्दन फैलाए उसी की तरफ़ एक टक देख रही थी। एका-एक नीली को देख कर उसका मन खिल उठा। वह पूँछ हिलाती, दुलराती, इठलाती उठ खड़ी हुई और नीली के पास जा कर उसे सूँघने लगी। नीली की आँखों में प्रसन्नता छलक आयी और उसने पूसी के सुनहले मुलायम रोयों में अपनी नन्हीं-नन्हीं अँगुलियाँ सहला दीं। कुतिया की खुशी कुछ और बढ़ गयी और उसने अपना धूल-भरा पंजा उठा कर बच्ची के फेन-से धुले फ्राक पर रख दिया। नीली ने दोनों पंजों को उठा कर अपनी गर्दन पर रख लिया और मधुर आलिंगन के एक क्षण के बाद दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगीं।

कुवार का उतरता पखवारा था। अभी शाम नहीं हुई थी, पर

सूरज जल्दी-जल्दी अपनी किरणों के जाल को समेट रहा था। अगल-बगल सनई और ज्वार-बाजरे के बड़े-बड़े पौधे चुप-चाप डरे-से खड़े थे। सनई के फूलों की पंखुड़ियाँ और चकवड़ की पत्तियाँ, जैसे किसी दुःख में डूब कर सिकुड़ गयी थीं। हवा बहुत थक कर आम की पत्तियों पर सो गयी थी। रास्ता किसी मधुर स्वप्न में डूबा हुआ था और इधर-उधर उगी हुई काँस का मन बुढ़ापे के कारण लटक गया था।

नीली रह-रह कर काँस के फूलों को नोच लेती, फिर उसके डंठल को दाँती से काट-कर फेंक देती थी। पूसी कभी-कभी रुक जाती और नीली की आँखों में देख कर मानो कहती, "बड़ी बे-दर्द हो सखी! क्यों इन बेगुनाहों को तोड़ती हो?" और फिर कभी आगे, कभी पीछे हो कर चलने लगती।

रास्ता एक ओर बल खा कर पगडंडी बन गया था, जो पिछली रात की आकाशी गंगा-सा बाउली के भीट पर चढ़ कर चुपचाप खड़े-खड़े मुस्कराने वाले शीशम और शिरीष के पेड़ों की ठंडी छाँह में सो गया था और दूसरा नीली की फुलवाड़ी के फाटक से सटे छितवन (सप्तपर्ण) की मादक खुशबू में डूब कर मतवाला हो छितरा गया था....सड़क बन गया था!

नीली अभी मोड़ पर नहीं पहुँची थी कि पूसी ने एक गिलहरी का पीछा किया और फुलवाड़ी की बग़ल वाली पगडंडी से बाउली पर हो रही—बिलकुल घाट से खड़े अशोक के पेड़ की जड़ के पास, टुकुर-टुकुर देखती-देखती! नीली भी मुड़ी, पूसी ने उसे देखा तो उछल-कूद बंद कर दी। लेकिन बार-बार ज़मीन को सूँघती रही।

नीली ने बाउली का घाट देखा—मटियाहा-मटियाहा-सा और किनारे तक फफके पुरइन के पत्तों को भी, जिस पर जगह-जगह पानी की गीली मोती की आभा, सूरज की किरणों से कुछ सुनहली हो रही थी। कमल के फूल भी थे, पर सफ़ेद नहीं, लाल-लाल और कुछ उदास-

उदास। सामने कनइल की डालियाँ पानी की सतह को चूम रही थीं, पर सब सुनसान और एकाकी....

पूसी भीट से नीचे उतरी....उसका मन कुछ चंचल हो उठा। इधर-उधर चकपका रही थी, तब तक एक कुत्ता निकला, भूँका और दौड़ कर उसकी गरदन पकड़ कर उठा लिया, फिर ज़मीन पर पटक कर दरेरने लगा। कैंऽ....कैंऽ....पैंऽ....पैंऽ....की आवाज़ आयी, नीली दौड़ी, तो उसने देखा पूसी विपत में फँस गयी है और कुत्ता उसे बेतरह रगड़ता जा रहा है। पहले वह डरी, फिर एकाएक दौड़ी और पूसी को उसने अपनी गोद में छिपाना चाहा। कुत्ते के मुँह पर उसने हाथों से मारा। कुत्ते ने बँधी-बँधायी मुट्ठी मुँह में ले ली और कच-से दबा दिया। मुलायम फूल-जैसे हाथों में से खून फूट पड़ा और नीली चिल्ला उठी। कुत्ता कुछ दूर खड़ा-खड़ा भूँकता रहा। पास ही की खपरैल वाली नन्हीं बखरी से एक औरत निकली, उसके पीछे उसकी छोटी बच्ची भी थी। नीली को देखा तो चिल्ला पड़ी, "मेरी रानी बिटिया!" और दौड़ कर उसने नीली को गोद में भर लिया, पर नीली ने पूसी को छोड़ा नहीं, दूसरे हाथ से उसकी धूल झाड़ती रही।

स्त्री बहुत डर गयी थी। वह नीली के घर पर सेवा-टहल का काम करती है और यह कुत्ता उसी का था। नीली ने कहा, "पालो माँ, मेली पूछी को उठा लो, घल पहुँचा दो!" पारो का जी भर आया, उसने नीली को गोद में उठा लिया। "यह कौन है पालो माँ?" नीली ने पारो की बच्ची की ओर अँगुली से इशारा किया।

"यह रितिया है बिटिया! मेरी बेटी।"

"तो हम इछे भी छाथ ले चलेंगे!" नीली ने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा। पारो नीली को घर पहुँचाने चली तो रितिया और पुसिया भी साथ-साथ आयीं। बाउली के किनारे पहुँचते ही नीली ने

कहा, "लीती, यह देखो कमल के फूल !" रितिया ने बाउली की ओर देखा; फिर माँ के पीछे-पीछे चलने लगी।

उस रात नीली को बहुत तेज़ बुखार हो आया और हाथ से लगातार खून बहता रहा। जानकी और उसके पति बहुत परेशान हुए, पर बच्ची होश में न आयी। अगल-बगल बात फैल गयी। बहुत से लोग दौड़ कर रानी बिटिया को देखने के लिए आये। गाँव के वैद्य जी, हकीम जी, कुत्ता काटने पर झारने वाले; सभी आये पर कोई फ़ायदा न हुआ। जानकी जली-जली आँखों से पारो को देखती, पूसी पर निगाह डालती और चुप हो जाती। लगता, जैसे कह रही हो, "बच्ची को अच्छी हो लेने दो, तो तुम दोनों की खबर लिवाती हूँ।" रितिया बड़ी उत्सुकता से नीली की ओर देखती—शायद बिटिया आँखें खोल दे—और पुसिया कूँऽ कूँऽऽ करती हरदम चारपाई के चारों ओर चक्कर काटती रहती। एक बार वह जानकी के आगे पड़ गयी, उसने एक लात जमा दी। कुतिया रो उठी—पेंऽ....पेंऽऽ....और कुछ दूर चली गयी, फिर लौटी और रितिया की गोद में जा कर चुपचाप बैठ गयी।

दिन चढ़ आया, पर नीली को होश नहीं आया। लोग कहते, "बड़ा जुलुम हो गया भाई, बड़े-बड़े मुश्किल से तो ठाकुर के एक लड़की हुई, वह भी बेचारी...." और वे भय के मारे सिर झुका लेते।

मकान में चारों ओर उदासी छा गयी थी। धीरे-धीरे लोगों के मन से नीली के जीवन की आशा हटने लगी थी—बड़ी दुखी, बड़ी त्रस्त हो कर। रितिया और पूसी जैसे रह-रह कर यही सोचती थीं—नीली अब उठती है, अब उनसे बातें करती है।

इसी बीच शहर का डाक्टर आ गया। लोग दौड़े आये। उसने बच्ची को देखा, तो कहने लगा, "बड़ा खून निकल गया है और बुखार भी तेज़ है। दिल धीरे-धीरे बैठ रहा है। यदि कोई खून दे सके....

यंत्र रख दिये गये थे और जानकी तथा उनके परिवार वालों का रक्त लिया जा रहा था। सब की जाँच हो रही थी, पर एक-एक कर सब का खून बेकार सिद्ध होने लगा। धीरे-धीरे कमरा खाली हो गया ....पूसी कुहकी और पूँछ हिला कर डाक्टर के पतलून से जा सटी। दोनों पंजे उठाए....डाक्टर बड़ी उदास-सी हँसी हँस कर रह गया... कुतिया चुपचाप वहीं बैठ गयी। तब तक डाक्टर ने देखा, दो नन्हें, पतले हाथ बढ़े हैं, पर अनबोले-खामोश।

डाक्टर ने देखा, तो उसी तरह मुस्कराया और खून निकालने वाला यंत्र उठा कर बच्ची की आँखों के आगे कर दिया, "देखती है, इसे चुभाया जाता है!" वह सोचता था लड़की डर जाएगी, पर वह मुस्कराती रही। बस इतना ही उसके मुँह से निकला, "रानी बिटिया.... अच्छी हो जायगी न?"

डाक्टर का मन जैसे किसी ऐसे भाव से छू गया, जो खतरनाक न होने पर भी कलेजे को कँपा देता है। उसने यंत्र लगाया पर लड़की टस-से-मस न हुई। खून देखा गया....ठीक निकला और कुछ मिनट बाद ही नीली ने आँखें खोल दीं।

रितिया और पूसी ने उसे बड़ी ही रुआसी, किन्तु प्रसन्न आँखों से देखा....डाक्टर का मन भारी हो आया। जानकी ने रितिया को सीने में कस लिया। नीली के बाप तो जैसे खुशी से पागल हो गये।

नीली, रितिया और पूसी अब हमेशा साथ रहतीं। कभी गुड़िया का ब्याह रचाया जाता, तो बड़े सबेरे मुँह-अँधेरे ही नीली और रीती फुलवारी वाले पारिजात के फूल बटोरने पहुँच जातीं। वहाँ कोई तितली देखतीं, तो उसके पीछे मचल पड़तीं। फिर पूसी ही क्यों पीछे रहती, उछल-उछल कर, मुँह बना कर इधर-उधर दौड़ती। "पूछी आज तेली

शादी होगी, और तू लीती, एक माला तो बना दे !" नीली कहती और पूसी सजधज कर दुलहिन बन जाती। फिर बाग के एक-एक कोने में बउलिया के एक एक पेड़ के पास उनकी उछल-कूद लगी रहती।

कभी नीली मन लटका कर कहती, "देख लीती, मैं बीमाल थी न, तो तूने खून दिया था औल अब तू बीमाल क्यों नहीं होती, मैं खून दूँगी तुझे, मेली लानी !" और वह गम्भीर हो जाती। पूसी पूँछ हिलाने लगती, पर रीती हँस पड़ती और कहने लगती, "मैं फिर-फिर खून दूँगी और बीमार नहीं पड़ूँगी।"

"नहीं पलेगी, तो तुझे बीमाल कलूँगी औल खूब हाथ काट कलके तुझे खून दूँगी।" नीली गुस्से में ही कहती और फिर दोनों आपस में एक-दूसरे के कंधे पर हाथ रख कर इधर-उधर घूमने लगतीं।

रोज़ उनका एक-न-एक नया कार्यक्रम बनता रहता। असाढ़-सावन का महीना था। बड़ी बारिश हो रही थी। रीती रात-दिन नीली के ही घर रह जाती और दोनों रोज़ गुड़ियों का एक नया खेल रचाया करतीं।

एक दिन रीती ने कहा, "नीली, तेरी गुड़िया औल मेरे गुड्डे की शादी हो जाए !"

"हो जाए !" नीली ने हँसते-हँसते कहा, "पल भाई, पूछी मेली ओल छे ही लहेगी !

"क्या हुआ, ठीक है !" रीती ने कहा। बात जानकी तक पहुँची।

खूब धूम-धाम से तैयारी होने लगी। जानकी और पारो भी इस शादी में शामिल होंगी, ऐसा तय हो गया। दिन निश्चित हो गया, पर दो चीज़ों का अभी कुछ तय नहीं हुआ।

रीती ने कहा, " पान तू लाएगी !"

"औल फूल तू न !" नीली ने हँसते-हँसते कहा और अपनी गुड़िया को सुनहरे तारों वाली साड़ी पहनाने लगी।

शादी बउलिया वाले देवता के यहाँ होगी। नीली के बाप ने जगह साफ़ करवा दी। बैठने का इन्तज़ाम भी हो गया। जानकी ने कहा, "कुछ खाना-पीना भी हो जाए, तो क्या बुरा है पारो ?" "जैसी मर्जी हो, रानी जी ! मैं तो तैयार ही हूँ" पारो ने कहा। तब तक नीली दौड़ती हुई आयी और "पालो माँ ! पालो माँ !" कह कर उससे चिपक गयी।

जानकी देख कर हँसी, "पारो ! नीली अब तुम्हारी भी लड़की है। पहला जनम तो इसे मैंने दिया, पर दूसरा जनम रीती ने ही।" पारो हँसने लगी।

नीली गंभीर हो गयी, "लीती ने मुझे दूछरा जन्म दिया है.... औल मैंने....औल मैंने !" वह उदास हो गयी। उसी समय पूसी आयी और उसके हाथ-पाँव चाटने लगी। वह उठी और हँसती हुई बाहर चली गयी।

आज सुबह ही शादी होने को थी। नीली के पिता ने खाने-पीने का पूरा इन्तज़ाम कर लिया था। दरवाज़े पर भीड़ लगी हुई थी।

अभी सूरज की किरणें पूरी लाल भी नहीं हो पायी थीं, पर उनका प्रभाव बाउली वाले शीशम की टहनियों पर साफ़ उतर आया था। रात के ओस के भार से थके हुए पौधों की पत्तियाँ धीरे-धीरे सीधी हो रहीं थीं और शेफाली की ढुरन थम गयी थी....पानी पर लहराते हुए पुरइन के पत्तों की शोभा के आगे स्वर्ग की मुक्ता भी पीछे पड़ गयी थी। हाँ, कमल के अधमुँहे फूल अभी बहुत प्यासे थे। शायद किरणों के उतरने का इन्तज़ार था।

नीली, रीती और पूसी बाउली पर पहुँच गयीं। देवता अभी सो रहा था। उन्होंने इधर-उधर देखा, शेफाली की ओर नज़र दौड़ायी,

"लीती तू यहाँ छे फूल ले ले। देख मैं पान तो ले आयी, अभी जब गुष्ठुई की डाल निकलेगी, तो जलूलत लगेगी न!" नीली ने कहा।

"ज़मीन पर गिरे फूल? नहीं नीली! आज मैं कमल के फूल ले आऊँगी।" और वह बाउली की ओर मुड़ गयी। नीली कुछ कहना ही चाहती थी कि रीती पानी में उतर गयी....घुटने से कमर....कमर से गले, फिर अथाह पानी और पुरइन का जाला। रीती कमल के पास पहुँच गयी....फूल हाथ में तो आ गया पर वह....? नीली चिल्लायी "लीतीऽ....लीतीऽऽ!" और इतने में पूसी पानी में कूद पड़ी। रीती कुछ ऊपर आयी, उसने हाथ फटफटाये, कुतिया पकड़ में आ गयी। "लीतीऽ....लीतीऽऽ....मेली लीती....मुझे...." और फिर छप्....की आवाज़ फिर एक शून्य, निरंतर शून्य।

जानकी, उसके पति, पारो और अन्य सैकड़ों लोग बाजे-गाजे से 'बाउली पर पहुँचे। खाना-पीना सब पहुँच गया और एक पालकी में गुड़ुई-गुड़ुवे की डाल भी पहुँच गयी, पर इन प्राण-हीन दुलहिन-दुलहे के माता-पिता? पारो ने जानकी की ओर देखा और जानकी ने पारो की ओर। सबों ने देखा पानी की सतह पर एक कमल का फूल और दो लगे हुए पान तैर रहे थे!

घूरा

आज तीसरा दिन था पर बारिश नहीं थमी, गृहस्थ लोग बार-बार बाहर निकल कर, बादलों की ओर देखते पर वे तनिक भी फटते नज़र नहीं आ रहे थे। उनकी हल्की घुमड़न, और बूँदों की सरसराहट के अतिरिक्त, कोई आवाज़ कहीं से नहीं आती थी। ऊपर काले-कजरारे, घनघोर मेघ और नीचे भीगी, हल्की-भूरी कीचड़—जिसमें जगह जगह कूड़ा-करकट, और गोबर के सूखे कंडों के द्वीप और उन द्वीपों के ऊपर रेंगते हुए केचुए, गोबड़ौरे, और मखमली वीरबधूटियाँ। रह-रह कर आसमान में बादलों की गहरी भूरी, किन्तु टोक पर श्वेत लटें धुएँ-सी दौड़ जातीं और पानी की कड़ी बौछार होने लगती। पानी में बुल्ले उठने लगे थे और लोगों का कहना था कि "यह ताल-पोखर एक करने वाली बरसात के लच्छन हैं।"

ब्यास की मड़इया और पाही वाले ठाकुर की दालान में दिन-दिन भर गँवई ठाकुरों और परजों की मंडली जमी रहती, और खेती-बारी के भविष्य, नये क़ायदे-क़ानून, गाँव के आपसी झगड़े-झंटे तथा बटोर-पंचायत की बातें चलती रहतीं। गोरू-बरधा सब सिकसिका गये थे। छोटे-छोटे खउरहे कुत्ते भी चारपाई के नीचे मुकुड़ी मारे, पेट में मुँह गाड़े पड़े थे पर बतकही और चिलम की गर्मी से किसानों का जमघट लगा रहता।

—राजाराम के घर में पानी जाने लगा, बेचारा बड़ा गरीब आदमी है, लेकिन रामधन अपने खेत में पानी जाने ही नहीं देता। कहता है, जहाँ से पानी का बहाव है, वहीं से पानी जाय, पर बैजूलाल को कौन कहे? गाँव के पटवारी हैं, इसी साल नयी बखरी बनवायी हैं और पानी का रास्ता बाँध दिया है।

मटरु क बखरी की पिछली दीवार अचानक भहरा पड़ी, खैर हुआ कि कोई दबा नहीं—लड़के-बच्चे तो उसी रास्ते से निकलते-पैठते थे, और दुखो-बो तो बड़ी बिपत में फँस गयी हैं। सिवान में पानी खचा है, उसकी बखरी की नींव तक पानी चपा है, अब नाबदान में से पानी बाहर नहीं हो रहा है।

ब्यास का बुढ़वा बरधा बैठ गया है, अपने से उठ ही नहीं सकता—बड़ी कमाई कराया, इसी खूँटे पर बारह बरस से सानी-पानी कर रहा था। अब आखिरी समय है, कहीं छाँह धरा देनी चाहिए, वर्ना मर जाएगा तो बड़ा सराप लगेगा।

—घूरा की बिपत का कोई ओर नहीं। गाँव के बीच में घर ठहरा। ठाकुर-बाम्हन होती तो दूसरी बात थी, जिसे देखो अपने-अपने दरवाज़े पर ऊँची मेड़ बाँध दिये है, चारों ओर से बखरी डूब रही है! हमेशा तो नम्बरदार की कोलिया में ही हो कर पानी बहता था न! पर समय है भाई! जिसकी बात बिगड़ती है, ऐसे ही।

"साँवला, चिकना रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, और जामुन-जैसे काले बाल, दाँत कुछ बाहर को निकले हुए, और जबान की पतली, मन की चुलबुल; बड़ी कदावर औरत थी भैया!" सामू चौधरी हुक्के का धुआँ छोड़ते हुए कहने लगे। धुआँ सावन के इस झरिहर में सितिया कर, पानी की नन्हीं बूँदों में जा कर खो गया। वे चुप रहे, बीते दिनों की स्मृतियाँ सँजोते हुए—सँवारते हुए। कोई बड़ी बात तो कहनी थी उनको। ब्यास की मड़इया में खामोशी छा गयी। हवा का एक सिहरन-भरा झोंका आया और धुएँ की तरह पानी की फुहार छोड़ता हुआ चला गया। बादल एक बार घुड़घुड़ाया, फिर थम गया।

"घूरा उस जमाने की मेहरारू है भैया! जब जवाहिर भगेलू के घर में धन का जोर नहीं था। सारा गाँव हारे-गाढ़े उनके यहाँ हाथ फैलाता था। रुपया-पैसा, अनाज-पानी, सब से वह मदद करता

था। तैसी ही दो औरतें थीं : घूरा और मराछी, जैसे हाथी का बच्चा—बालों से तेल चूता रहता था, तेल; पर सब तो मर गये कमाती-खाती उमर में, इसी ने न जाने कौन-सा लोक बिगाड़ रखा था।" बीच में लालता सिंह बोल उठे, "आखिर लंबरदार पानी क्यों नहीं बहने देते दादा ?"

"तुम क्या जानोगे, अभी कल के तो जनमे हो बेटा ! वही लंबरदार थे कि हारे-हरजे पचासों बार, उसके यहाँ हाथ फैलाते थे। लड़की की शादी पड़ी, घर में कौड़ी नहीं थी, भगेलू से कहा, 'कुछ रुपये का प्रबंध कर दो !' पर भगेलू की पुरानी रकम पड़ी थी, देने का नाम तो लेते ही नहीं थे। उसने कहा, 'बाबू ! जहर खाने को धेला नहीं है।' अपना-सा मुँह ले कर लौट रहे थे, रास्ते में बुरिया मिल गयी—पद में देवर लगते थे न ! उसने हँसी की, 'गर्मी में इतनी मेहनत क्यों करते हो बबुआ ! मुँह सूख कर अमहर हो गया है।' 'मेहनत क्या करूँ घूरा ! बड़े झँझट में फँस गया हूँ।'

'हमें न अपने घर में रख लो !' कह कर घूरा मुस्करायी, "गजब हँसती थी—बड़ी-बड़ी आँखें फैल कर कान तक पहुँच जाती थीं; और दाँत ? कुछ न पूछो ! पान की लाली में बारहों घंटे डूबे रहते थे।"

"लंबरदार को कुछ सहारा मिला। कहने लगे, 'तुम्हें रखने को मेरी जाँघ में जोर कहाँ घूरा ! पैसा न चाहिए।'

'पैसे की क्या कमी है बबुआ !'

'बड़ी कमी है घूरा !' लंबरदार ने मन लटकाते हुए कहा, लड़की की शादी पड़ी है, घर में कौड़ी नहीं है, गया था साव के यहाँ, पर उन्होंने दो-टूक जवाब दे दिया।' घूरा गम्भीर हो गयी। पैसे के नाम पर बनियाँ, और सनेह के नाम पर वेश्या की यही हालत होती है।

लापरवाही से मन गिराते हुए कहने लगी, 'कुछ तंगी में हैं अबुआ ! जौनपुर वाली दूकान में बड़ा घाटा लग गया, नहीं तो देते क्यों न !'

"घूरा चली गयी, पर लंबरदार ने कई बार उसे साँझ-सकारे टोका, 'घूरा, इज्जत तुम्हारे हाथ में है भौजी ! किसी तरह पगड़ी रख लो, कल ही तिलक जाने वाला है। बड़ी पुन्य होगी। लड़की की बात है, अगर चढ़ी लगन छूट गयी तो पचास भेद निकलेगा।'

"घूरा ने दिलासा दिया, 'कन्या की बात है बबुआ, जैसे तुम्हारी, तैसे हमारी, पर बबुआ....देखो, रात को बताऊँगी....'

"तिलक सबेरे ही जाने वाला था। रात को लंबरदार को बार-बार बुलावा आया पर वे ठहर पर नहीं गये। बार-बार कोली झाँकते थे। आखिर रात को, करीब दो पहर रात गये पाँच सौ रुपये की गठरी आँचल में छिपा कर, घूरा आयी और बिना कुछ बोले लंबरदार के हाथों में थमा कर चली गयी। हाँ, जाते-जाते उसने कहा, 'कानों कान साव को खबर न लगे बबुआ ! वर्ना मेरी चमड़ी उधेड़ लेंगे।'

"पर बात कहाँ से छिपती ? आखिर अपने गाँव को तो जानते ही हो भैया ! किसी ने जवाहिर के काम में बात डाल दी और उसके बदले में उसने घुरिया को बुरी तरह पीटा। उसके चमड़े फूल आये। कई दिनों तक रोती रही पर उसने कबूला नहीं।

"तिलक के बाद जब-जब लंबरदार उसे देखते उनकी आँखों में आँसू अनायास छलक आते। एक दिन चुपके से उन्होंने कहा, 'बड़ी उमर होगी भौजी ! तुमने मुझ बूड़ते हुए को बचा लिया है। मैं जल्दी ही रुपयों का परबंध करके, तुम्हें दे दूँगा। तुम्हें मेरी वजह से बड़ी तरद्दुत हुई, न जाने किस साले ने सेठ का कान भर दिया।'

"घूरा की आँखें उस मार को याद करके भर आतीं। जिस साव ने कभी उसे दूब की सिटकुन से नहीं छुआ था, इसी कारण उसे इतना पीटा, पर उसके मन में जैसे प्रसन्नता थी।

"साल भर बीत गया। घूरा ने रुपयों के लिए मुँह नहीं खोला पर जब चैती की फसल कटी तो उसने कहा, 'बबुआ अब तो....' 'जरूर-जरूर भौजी !' लंबरदार ने बात टाली, फिर बाद को कहने लगे, 'रुपया तो नहीं जुट रहा है, कही कुछ खेत रेहन करा लेती।'

'खेत....? भला मैं खेत कैसे लूँगी ?'

'फिर अभी मुश्किल है घूरा !' उन्होंने कुछ कड़ाई से कहा, सबूत भी क्या था और आखिर में उन्होंने सीधे-सीधे कह दिया, 'कैसा रुपया ?'

"घूरा सिटपिटा गयी, उसकी आँखें विस्मय से भर गयीं, उसका कलेजा धड़कने लगा, उसे पसीना हो आया। बटोर-पंचायत ? वह भी तो नहीं कर सकती थी बेचारी, उठी और कहती हुई चली गयी, 'यही तुम्हारा दीन-धरम कहता है न बबुआ ! जाओ समझ लूँगी लड़की को कन्यादान पर दे दिया, पर तुम्हारी नियत का फल भगवान तुम्हें जरूर देंगे।'

"लंबरदार सिटपिटा गये।"

ललता सिंह ने कहा, "बड़े बेइमान थे दादा, वे।"

"बेइमान, अरे बेइमान न होते तो फलते-फूलते नहीं। देखो सोर-संखार भी तो नहीं रह गयी और आज उसका पानी बाँध कर, बेचारी को बरसाती बिल का मूँस बनाये हैं।" सामू चौधरी ने हुक्का खटिए की पाटी से उँठगा दिया।

मड़इया में कोने से लगी हुई दीवट पर मिट्टी के तेल की डिबरी धुआँ उगलती हुई सिसक रही थी और रह रह कर उसकी रोशनी हवा के झोंके में ठेढ़ी हो कर, कम हो जाती थी। पानी का बरसना कुछ कम हो रहा था पर ऐसा नहीं कि बूँदें नहीं पड़ रही थीं। एकाएक चमक हुई। बिजली कड़क उठी और बूँदों की ज़ोर की सरसराहट हुई।

पानी निचुसने की आशा लोगों के मन में खिसिया कर दुबक गयी। चारपाई के नीचे पिल्ला कुहुक उठा और ब्यास की बछिया ज़ोर की डकरी—शायद गाय ने खूँटे से छुड़ा लिया और बछिया अकेली पड़ गयी थी।

अभी बहुत रात नहीं बीती थी पर चारों ओर अँधेर गुप्प—हाथों-हाथ न सूझता था। हाँ, सूम के धन की तरह बड़ी मुश्किल से कभी-कभी बादलों में चमक हो जाती थी। हवा में हल्की सिहरावन आ गयी थी, फिर भी हुक्का-तमाखू और बातचीत के मोह में लोग वहाँ जुट ही जाते हैं, जहाँ चार आदमी बैठते हों। खुद्दी लोहार खटनही पहिने आये, छाता बंद करके रखते हुए, बड़े उदास स्वर में बोले, "बड़ा नुकसान हो गया बेचारी का।"

"किसका?" ब्यास ने बात बीच ही में छीन ली।

"घुरिया का।"

"क्या पानी बखरी के दालान में चला गया क्या?"

"हाँ, सब सौदा-सलफ नष्ट हो गया और उसको बिच्छी ने डंक मार दिया।"

अपनी करनी भोग रही है घुरिया।

करनी? हाँ करनी ही। इसीलिए तो उसके दोनों लड़के बुधुआ-मगरुआ चारपाई तक नहीं देते सोने को।

वह घूरा जो रात के अँधेरे में पलंग के नीचे पैर नहीं रखती थी, सुख-सम्पत्ति पाँवों पर लोटती थी, दुख और दारिद्र्य की तो बात दूर रही, वह बच्चों की गाली सहती है और इस बरसात की रात में, सीलन भरे दालान में ज़मीन पर सो कर रात गुजार देती है। कैसे

बीतती होगी रात ? और नहीं तो क्या, वे दिन, और वे सुनहले सपने भूल गये होंगे ? उसे याद न आते होंगे ?

"धरमदेइया खाले पड़ गयी है न बाबू ! और यह मगरू उसे फूटी आँखों देखना भी नहीं चाहता। कुछ भी हो तो वह हमारी लड़की है। इसी तन से उत्पन्न हुई है। आखिर यह सब तो उसी के बाप की कमाई है न !" घूरा की आँखों के नीचे की सलवटें आँसू से भर जाती हैं। एक नहीं, हजारों पतली-तिरछी आँसू की रेखाएँ, जो लगातार रिसती रहती हैं, जैसे कोई झरना। उसे अपने तन की चिन्ता नहीं है। एक बहुत पुराना अँगोछा जिसमें थिगलियाँ झूलती रहती हैं—चूतड़ और सोने-पीठ पर कई छेद हैं। पर नहीं, "धरमदेइया खाले पड़ गयी है न बाबू !"

घूरा को यही नशा है। क्योंकि उसकी वैभव भरीं आँखें आज अपनी लड़की को ग़रीब के घर में देख कर एक असीम कातरता से, अपनी पुरानी बातें याद करती हैं। वह गौरव, वह असूदगी उसकी नस नस में काँटा बन कर चुभने लगती है और वह पागल की तरह सबसे घूम-घूम कर यही कहती है। उसके जेठे लड़के मगरू को उसके ऊपर शक हो गया है। वह ग़रीब बहनोई को घरजमाई नहीं बना सकता, दूसरे उसे यह बदनामी भी सह्य नहीं है।

पराया, पराया-पन सह सकता है, पर जब अपनों से पराया-सा व्यवहार होने लगता है, तो वहाँ एक गहरी खाई ख़ुद जाती है। घूरा दूकान में पैर नहीं रख सकती। डर है, कहीं कुछ चुरा कर दमाद को न दे दे। "बुद्धू ! ताला बंद रखना। देखो, जब घूरिया घर में जाय तो नज़र रखना।" मगरू कहता है और जब साँझ को दूकान से दूर दीवार के सहारे बैठी हुई घूरा कहती है, "मगरू ! एक चिलम तमाखू !" तब मगरू गुर्राता है—"एक चिलम तमाखू, एक चिलम तमाखू, कितनी तमाखू चूसती है ! अभी तो दिया था न, चल, हट यहाँ से !"

तो घूरा की आँखों की रोशनी बुझ जाती है—आँधी के दीपक की तरह। मरु-भूमि में पानी की खोज कौन करता है? जिसके पैरों में चलने की ताकत हो। घूरा तो रो भी नहीं सकती! अपने कतरे हुए बालों के बीच अँगुलियाँ घुसेड़ कर, माथा थाम लेती है। एक धुंध, ठीक रतौंधी के मरीज़ की तरह, उसकी घिघोरे पानी की-सी आँखों में उठती है और रात-दिन छायी रहती है। गाँव के लड़के तालियाँ बजाते हैं, हँसते हैं...."—घूरा अमिरती चाभोगी, सिलिक पहनोगी....? तमाखू पी लो, तमाखू!" और जिस रास्ते वह चलती है, दो चार कुत्ते भूँकने लगते हैं। "क्यों भूँकते हैं कुत्ते घूरा तेरे पीछे?" इन्हें आदमी भुँकवाते हैं। लड़के, गाँव के हँसोड़ बच्चे, जो अपने माँ-बाप के प्यारे हैं.... बच्चे....और बच्चे....घूरा सोचती है और उसकी निगाह कुछ साफ़ हो जाती है।

—साव के मरने के बाद मैं कितना रोयी थी....पर उस दुख की भी एक दवा थी। बच्चे, मेरे दो बच्चे और एक बच्ची है। फिर बनियाँ के लड़के, कमाएँगे-खाएँगे और मैं इनकी सेवा में समय गुजार दूँगी। दूकान पर बैठूँगी, सौदे-सलूफ का परबंध करूँगी, लेहना-तकादा देखूँगी और रात को देर तक इन्हीं बच्चों के पास सो कर कहानियाँ कहाँ करूँगी। कितनी अच्छी बात है। फिर शादी....बहू....नन्हें, लाल महावर में रँगे हुए हाथ....मैं उन्हें रानी बना के रखूँगी, रानी! मेरा मगरू बड़ा लायक होगा। सचमुच वह लायक था। कितना हँसोड़, बच्चे-सा स्वभाव—

"माई!"
"कारे!"
"माई!"
"का है रे!"
"जाऊँ?"

"जा बेटा !"

"एक बार फिर से कह दे !"

"जा बेटा !"

"ऐसे नहीं, डाँट के कह, जाता है कि आ कर पीटूँ !"

"अच्छा ले, जाता है कि आ कर पीटूँ ।"

—तब मगरू दूकान छोड़ता और घूरा गद्दी पर बैठ कर हुक्का पुड़काती हुई सौदा बेचती रहती। मगरू बिना माँ से पूछे पानी तक नहीं पीता। साव नहीं रहे तो क्या हुआ, बच्चे तो....

घूरा इन्हीं विचारों में डूबती तो उसे लगता जैसे वह इन्द्रासन पर बैठी है। पर एकाएक, "घूरा ! मगरू बो बरतन माँजने को बुला रही हैं।" कोई लड़का उसे चिढ़ाता, तो फिर वही धुंध, जिसका न आदि न अंत। एक सीमित दृष्टि, और फिर वही, "धरमदेइया खाले पड़ गयी है न बाबू !" और फिर मँगरू की वही बात, "ठहर पर बैठा कर इसे खाना देने की क्या ज़रूरत, बाहर ही रख दिया करो !"—वह पागल हो जायगी, पागल !

चौथे दिन पानी तनिक थमा, पर बादलों के आतंक से सँसी हुई किरणें एकाध बार अपनी रेशमी रोशनी दिखा कर छिप गयीं। कुछ राहत मिल गयी थी। लोग सुबह-सुबह खुश हो कर, घरों से निकले और बच्चे तो जैसे एक लंबी नींद से सो कर उठे हों। पानी में छपक-छपक दौड़, फिर तेज़ किलकारियाँ, "बड़की पोखरी तो भर गयी, हाँ, घिवपोखर उलट गयी। मछरी चढ़ रही हैं। माई मेरी कँटिया दे दे ! मछली मारूँगा।".

झिंगवा बिकने आ गया। ऐसे ही बरसात के शुरू में जब पानी गँदला हो जाता है, तब मल्लाह मछलियाँ पकड़ कर ले आते हैं। गाँव

की रसम है—सदा से साव ही के दरवाज़ पर तो मछलियाँ कटा करती हैं। घूरा ने ललचाई आँखों से झिंगवे के मटके की ओर देखा और फिर एक टक कुछ सोचती हुई नीचे देखने लगी।

आज मगरू कई दिन पर घर लौटा है पर घूरा कुछ नहीं जानती। इतना ज़रूर सुन रखा है कि उसके नाम वारंट कटा है, बीज गोदाम का अनाज जो वापस नहीं कर पाया! थोड़ा नहीं, पाँच सौ रुपये देने हैं, और मगरू रुपये के लिए नातेदारी-रिस्तेदारी दौड़ता रहा पर किसी ने पैसे नहीं दिये। घर भी तो सफ़ाया हो गया है। जो रुपया था, चक्की में लगा दिया—वह भी ठाकुर के साझे। बरियरा मारे, रोवै न देय; रुपया-रुपया गया, ऊपर से उनका हिसाब चढ़ गया। भूय—बाँगर बिक गयी, अब कोई ठिकाना न रहा। या तो मगरू जेल जाए या घर-बखरी कुड़ुक हो—यही रास्ता तो बच रहा है। फिर भी घूरा उदास नहीं है, जैसे उसका इस घर में कुछ है ही नहीं और मगरू भी उसे अपनी परानी तो नहीं समझता।

—लेकिन जवाहिर का लड़का.....घूरा का लड़का, घर से पकड़ कर थाने जाएगा? घूरा का मन रो देता—बहुत ही दुखी हो कर, कलप-कलप कर। उसका रोयाँ-रोयाँ जैसे इस बरसात की सिहरन में दुख के पसीने से सराबोर हो जाता। लेकिन वह एक चुप, हज़ार चुप। क्यों न हो? उस दिन तनिक से पूछने का ही तो नतीज़ा हुआ कि मगरू ने कोई करम उटा नहीं रखा।

"दमाद के लिए न मर रही है। इसी हरामजादी की नियत का फल भोग रहा हूँ। अब तो जेहल ही बाकी बची है, वह भी हो जाए। उठ, चल यहाँ से, तेरा मुँह भी नहीं देखना चाहता!"

घूरा पत्थर हो गयी है। उसका मक्खन-सा मुलायम कलेजा सूखे स्पंज की तरह खोखला हो गया है।

"ब्यास की मड़ई में सिपाही आ गये।" किसी ने कहा।

"सिपाही, मगरू को पकड़ने ?" घूरा की नसों में आसमान की बिजली चमक उठी। एक स्फूर्ति और स्पन्दन—कई दिनों के भूखे शरीर में भी माँ का अत्यन्त बलशाली और पवित्र हृदय।

घूरा उठ खड़ी हुई, देखा एक सिपाही मगरू को पकड़े है, दो बैठे हैं, और वहाँ लंबरदार, मुखिया, रामचंदर और सामू दादा। "इसके बाप ने कितनों की इज़्ज़त रखी है मुखिया ! जब-जब ठाकुर लोगों पर मालगुजारी का वारंट कटता और वे लोग थाने की तरफ ले जाए जाते, तो जवाहिर की थैली खनखना उठती। जीते जी उसने गाँव की इज्जत नहीं बिकने दी।" सामू चौधरा ने हुक्के पर दम लगायी, पर एक निर्जीव स्थिरता—कोई टस से मस नहीं हुआ।

सिपाहियों ने मगरू को पकड़ा ही था कि बिजली की-सी तेज़ी से दो सूखे सूखे हाथों ने उनके हाथ झिटक दिये। घूरा की लुटी हुई रोशनी वापस आ गयी थी, ठंडा खून गरम हो गया था। यह जवाहिर साव की स्त्री बोल रही थी—घुरिया थी.....कुछ लोग मुस्कुराये, कुछ हँसे, पर बुड्ढे एक गंभीर विचार में डूब गये।

एक सिपाही ने झटका दिया। घूरा तनिक सहमी तो सिपाही ने कहा, "बड़ी इज्जत वाली है तो रुपये ला कर दे दे !"

"तेरे जैसे सिपाही तो मेरा पानी भरते थे रे, दादिजार के नाती ! बड़ा रुपये वाला हुआ है।" घूरा ने ज़ोर से कहा।

मगरू बिगड़ा, पर उसका सिर झुक गया था। घूरा ने चिल्ला कर कहा, "बुधुआ, ले आ तो कुदार !"

लोग डर गये, झगड़ा करना चाहती है क्या ?

पर घूरा वहाँ रुकी नहीं। तेज़ी से अपने घर में घुस गयी। बुधुआ कुदार ले गया और थोड़ी ही देर में तीन सौ गिन्नियाँ, एक

मुर्च्छही बटुली में—पीली पीली....गोल-गोल। सबकी आँखें टँग गयीं, जैसे सबको किसी साँप ने एक साथ छू लिया हो। "ले अपना रुपया!" घूरा ने गिन्नियों का ढेर लगा दिया।

सिपाहियों का मुँह उतर गया। मगरू की आँखों से आँसू निकल पड़े—खुशी के नहीं, पश्चाताप के, और धरती पर गिरे टप्-टप्....।

सामू चौधरी का गला भर आया था, "यह जवाहिर साव की मेहरारू है बच्चू! पानीदार का पानी भगवान् रखते हैं।"

फिर एकाएक हवा का झोंका आया। वही सिहरावन जो तीन दिन से थी, पर कोई सिहरा नहीं और ऊपर से बादलों का एक टुकड़ा दौड़ता हुआ निकल गया। सूरज की साफ़ किरणें—निडर, लेकिन ठीक उन्हीं गिन्नियों की तरह पीली-पीली, धरती पर एक ओर से दूसरी ओर को दौड़ गयीं।

रेखाएँ

बिन्दु : रेखाओं का बीज, जिसकी तिमिराछन्न, ठोस छाती में असंख्य किरणों का पूँजीभूत संस्कार, विस्तरण और अनन्तता; पर इकाई और रूप-सज्जा में अमिलित संयोग, और संयोग में रेखाएँ—एक नहीं अनेक।

"इसीलिए रेखाएँ न खींचना, एक रेखा खींच देना! बिन्दु न बनाना, दो बिन्दुओं की दूरी को मिला देना!" मैंने इतना ही तो कहा था न! हाँ, इतना ही। नीहार कुछ नहीं बोली थी। क्षण-भर के लिए उसकी काली आँखों पर एक मोतिया पर्दा पड़ गया था। उसने अपने कजरारे, दीर्घ कुंतलों की छाँह में, मेरे सिर को छिपा लिया था और एक कुँवारी, भीनी महक, मेरी उदासीनता को, एक शान्तिपूर्ण मद-होशी में बदलना ही चाहती थी कि उसने टाला, "उदास हो रहे हो? मैं ज़रूर रेखा खींचूँगी, ज़रूर!"

—नीहार उस समय बारह-तेरह वर्ष की रही होगी, जब मैंने पहले-पहल उके पड़ोसी के घर देखा था। पड़ोसी बड़ा व्यस्त आदमी था। दूसरे उसके घर, उसकी पत्नी के अलावा दूसरा कोई था भी नहीं। इसीलिए हमारा आना-जाना वहाँ नहीं था। निरंतर ख़ामोशी का वातावरण, एकाएक टूटा और कँकरीली दीवारों के पार से मधुर हास की ध्वनि, सुदूर से आती हुई सिम्फ़नी की तरह कानों में पड़ने लगी।

—शाम को लॉन में पानी पड़ने लगा। गुलाबों की भी बन आयी। गर्मी का महीना : भयानक जलन और उसके साथ एक अतृप्त अलस और तन्द्रा, पर जब मैं शाम को बाहर निकलता, नीहार के सलवार की सलवटें, पानी से लथपथ मिलतीं। घास की एक-एक फुनगी, गुलाब की एक-एक पत्ती को, एक अजस्र मौन लिए खींचने में

उसकी निष्ठा उस समय दूनी हो उठती, जब वह अपने गुलाब की नन्हीं-नन्हीं कलियों को गिनती, एक....दो....तीन....और मेरे पड़ोसी की पत्नी के गले से लिपट कर कहती, "दीदी ! ये धूप में सूख जाती हैं !"

"तो इन्हें ले चल कर कमरे में न लगा दे ! पगली कहीं की, अरे,कहीं गुलाब गर्मी में खिलते हैं, यह कलियाँ तो वैसे ही निकल आती हैं।" वे उसे पास खींच कर, अपनी छाती से सटा लेतीं, फिर उसके बाल ठीक कर देतीं और देर तक सहलाती रहतीं।

—उस दिन संध्या में, एक हल्की, पिलछही रोशनी भर बाकी रह गयी थी। बरसात के लक्षण हो रहे थे और दिन ही से पुरवाई झकोर रही थी। हवा रहते, पसीने से शरीर चिपचिपाया रहता था। हम कई लोग, अपनी लान में नंग-धिड़ंग हवा ले रहे थे। एका-एक मि० हजेला की नौकरानी चिल्लाई, फिर घिघियाती हुई भागी। सब लोग हकबका कर उठ खड़े हुए। देखा तो, वह भय से थर-थर काँप रही है और उसकी ज़बान तालू से सट गयी है। वह कुछ कहना चाहती थी पर आवाज़ निकलती ही नहीं थी। मैंने पूछा, "क्या बात है ?" तो उसने टूटी हुई आवाज़ में कहा, 'साँ....प....साँ....प' और बच्चे की गाड़ी की ओर इशारा कर दिया। हम लोग बेतहाशा दौड़े, पर एकाएक गाड़ी के पास पहुँच कर, सबकी नसें फूल गयीं और माथे से पसीना आने लगा। एक पतली, चमकती हुई काली नागिन गाड़ी के कोने से हैन्डिल के ऊपर चढ़ रही थी। रह-रह कर उसके मुँह से निकलती हुई लाल चिनगी की तरह की जीभ ने हम सबों का साहस छीन लिया और ज़हर को भी अमृत की संज्ञा देने वाला छोटा कन्हैया, जैसे तनूजा की तरंगों में डूब कर, काली नाग को पकड़ लाने के लिए मचल रहा था।

—बच्चे को उठाना या नागिन को वहाँ से हटाना; दोनों खतरे से खाली नहीं थे—सब हतबुद्धि, सब जड़, जैसे किसी में कोई चेतना बाक़ी ही न हो। इसी बीच एक लड़की अंदर घुसी, भीगे सलवार से

पानी के छींटे पड़े और लोगों ने रास्ता छोड़ दिया। बगल वाला दोस्त भुनभुनाया, "कैसी पागल है, कि भीगे कपड़े पहने यहाँ चली आयी।" पर उसने, जैसे सुना ही न हो, एकाएक बिना कुछ सोचे-विचारे उसने गाड़ी के नीचे लटकती हुई नागिन की पूँछ पकड़ी और दूर झिटक दिया। फिर बिजली की-सी गति से बच्चे को उठा कर, उसे बार-बार चूमने लगी। उसका चेहरा एक भीनी अरुणाई के अबोध भोलेपन से दीप्त हो आया और मैंने देखा, वह नागिन धूल के ऊपर, टेढ़ी-मेढ़ी रेखा बनाती चली जा रही है।

—हम लोग खामोश थे और खामोश लौट आये पर वह टेढ़ी-मेढ़ी रेखा : बिलकुल सम टेढ़ाई और उसमें काली नागिन के पेट का गढ़न के हल्के कढ़ाव, एक अनन्त दूरी तक के लिए—जब तक कि नागिन जीएगी, बनती जाएगी। सुना, साँप सौ वर्ष जीता है—पूरे सौ वर्ष, आदमी से ज़्यादा। बड़ी लंबी रेखा होगी यह, और बड़ी अच्छी भी।

नीहार का पत्र आया—

मैं बीमार हो गयी हूँ डाक्टर! बीमारी भी कितनी अच्छी होती है, ठीक पतझड़ की तरह, जब प्रकृति अपने अतीत के विस्मरण में भविष्य का नहीं, अतीत का ही संचय करती है, भविष्य को पुष्ट करने के लिए। सच मानो, ये पेड़, ये नन्हें-नन्हें, सुकुमार पौधे और ये फूल अपने नये जीवन, नये सृजन के लिए सोचते हैं....मैं भी सोचती हूँ डाक्टर! और सोचते-सोचते न जाने कितने ड्राइंग पेपर रँग उठते हैं—काली-काली, आड़ी-सीधी रेखाओं से, पर इनमें समता नहीं आती, वैसी, जैसी नागिन अपनी कुंडली से बनाती है। मैं अपने नये जीवन का इन्तज़ार कर रही हूँ....तब शायद, तब....और हाँ, यह मेरा काछी नौकर बड़ा अच्छा है। मेरे लिए रोज़ सबेरे गुलाब की ताज़ी, श्वेत कलियाँ ला देता है, पर तुम्हारी तरह नहीं। इसके लाल मूँगे की तरह के होंठ जैसे

किसी मज़बूत ताले में बँधे रहते हैं। ठीक यंत्र की तरह वह चलता है, बोलता है और काम करता है। आदमी सदा से पाथर पूजता आया था डाक्टर! पर यह एक नयी परंपरा जोड़ रहा है—वह पाथर आदमी पूजता है।....पाथर आदमी पूजेगा....काछी लड़का बड़ा अच्छा है....

मेरा हाथ काँप उठा, जैसे किसी बिच्छू ने डंक मार दिया हो, और धीरे-धीरे उसका ज़हर ऊपर चढ़ रहा हो।

"किसका पत्र है भैया!" मीनू पूछता है।

"बीमार लड़की का।"—मीनू उसे बीमार लड़की ही कहता है।

"बीमार लड़की बीमार है मीनू!"

"तो उसे देख आओ भैया! वह तुम्हें बहुत याद करती होगी।"

"वहाँ देखने वाले हैं, मीनू!"

—आश्विन् ही तो था। शरद् की समरस, गंधयुक्त वायु से वातावरण कस उठा था। फूलों की रँग-रेलियाँ और लॉन पर फैली छिटपुट दूधिया घास के नन्हें-नन्हें, सुहाग-बिन्दी के तरह के कुसुमों ने घास की निर्मल, स्वच्छन्द हरीतिमा से, एक सम्मिलित दुलराव स्थापित कर लिया था। हवा घूम कर सबको छूती थी; और सब, एक नहीं, उसी शरारत-भरे नखरे से सिर हिला देते थे, पर वह फूलों की रानी....? उनकी रूप-सज्जा को निखार और ढलाव देने वाली देवकन्या, फूलों के पास नहीं देखी गयी। क्या बात है? हममें से सब सोचते थे पर कुछ पता नहीं चलता था।

एक दिन एकाएक मेरे पड़ोसी की स्त्री मेरे घर में घुसी।

"माफ़ कीजिएगा, यदि डा० को शीघ्र रिंग कर दें तो बड़ी कृपा होगी—"ट्रू, ज़ीरो, फ़ाइव, फ़ोर।"

"टू, ज़ीरो, फ़ाइव, फ़ोर।" शायद नीहार बीमार है।

"कहिए, नीहार की हालत बिगड़ती जा रही है!" उन्होंने घबराए स्वर में कहा।

मैंने अपने नौकर को जल्दी से बर्फ लेने को भेजा और लपक कर नीहार के पास पहुँच गया। फूलों की रानी, प्रबल आग की ज्वाला में झुलस कर, मुरझा गयी थी और आँखों की मुखरित ज्योति, काली बरौनियों में छिप गयी थी।

मैंने धीरे से सिर छुआ, एक दुर्दमनीय ज्वाला थी। टेंपरेचर लिया, १०४°। ठंडे पानी से सिर धोया और आइसबैग सिर पर रख कर, उसकी बगल ही में चारपाई पर बैठ गया। पड़ोसी स्त्री चुपचाप बैठी थी। उसकी मुद्रा में एक विश्वास और साथ ही दुख की कातरता उभर आयी थी। मैंने कहा, "आप कुछ खाना खा लें, मैं इसे देख रहा हूँ।" पर वे बैठी रहीं, उठीं नहीं।

एक घराटे....दो घराटे....धीरे-धीरे दस बज गया। बुखार कम हो गया। नीहार के शरीर में सुमगुमाहट हुई और उसने आँखें खोल दीं।

रुग्ण, सूख कर काटा हुए हाथ, लंबी-लंबी सूखे बाँस की खपच्चियों की तरह की अँगुलियाँ और हड्डी की तरह सफ़ेद नाखून। उसने चाहा हाथ उठें, पर वे नहीं उठे, जैसे कोई भारी भार उन पर बैठ गया हो। पर वह देखती रही—अधखुली आँखों से, जिनकी पुतलियाँ अप्रत्याशित रूप से स्थिर, तेज़ और बड़ी-बड़ी लगती थीं। वह कुछ बुदबुदायी। मैंने उसका माथा सहलाते हुए बालों को ठीक कर दिया।

उसकी आँखों पर एक हल्की, पानी की सतह चढ़ गयी। उसका

चेहरा उग आया। एक बहुत हल्की किन्तु कमज़ोर लाली, जैसे एक ओर से दूसरी ओर को छू गयी हो।

मैंने पूछा, "ठीक हो?"

"हाँ....ठीक हूँ।" उसने टूटी हुई आवाज़ में कहा और अपना हाथ सरका कर, मेरे हाथों के पास ले आयी, फिर खींच लिया।

"कुर्सी पर बैठो....टायफ़ाइड है।" उसने उसी तरह कहा।

"मुझे नहीं लगेगा।"

"डाक्टर हो?"

"नहीं।"

"मैं तुम्हें डाक्टर ही कहूँगी।" उसने मुस्कुराने का प्रयत्न किया, और सूखी हड्डियों पर चढ़े सफ़ेद चमड़े में एक अनदेखी रेखा बन कर रह गयी। मैं आने लगा तो उसने कहा, "फिर आना!"

मैं उससे बराबर मिलता रहा। धीरे-धीरे जब वह अच्छी हो गयी तो मेरे कंधे पर हाथ रख कर दूर तक टहलने लगी।

एक दिन धूप की हल्की लाली में, ओसिआई घास की चिप-चिपाहट से ऊब कर, वह खड़ी हो गयी। कुछ देर अपनी छाया देखती रही, फिर मुझसे कहने लगी, "तुमने मुझे देखा है?"

मैंने कहा, "हाँ"

"नहीं, बिलकुल नहीं। देखो, अपने साथ देखो! अपने को मुझसे मिला कर देखो!" मेरी निगाह उस छाया पर पड़ी—एक लंबी, पतली छाया, जैसे वृक्ष के सहारे बल्लरी, और अचानक एक सिहरन मेरे शरीर में रेंग गयी।

"शायद तुम्हें रेखाओं का ज्ञान नहीं है?" फिर कुछ रुक कर,

"रेखाएँ हँसती हैं, रोती हैं....देखोगे मेरा अलबम ?" और वह मुझे अपने कमरे में पकड़ ले गयी।

मैंने बहुत-सी रेखाएँ देखीं, केवल रेखाएँ, जिन्होंने अपने अमिलित सौन्दर्य में, स्वरूप विभिन्न कायाओं को बाँध रखा था, और मैं सोचने लगा, उस सर्पिणी की कुंडली वाली रेखा, और फिर नीहार के ज्वरोपरान्त पीड़ित, थके, उदास चेहरे पर मौन हास की रेखा....।

मीनू लिफ़ाफ़ा दे कर पूछने लगा, "बीमार लड़की का लिफ़ाफ़ा है भैया ?"

"हाँ, उसी का है मीनू !"

—मैं बीमारी से उठ गयी हूँ डाक्टर ! अब रेखाएँ नहीं खींचती। शायद वे ही मुझसे थक गयी हों। देखो न, अब वे मुझसे मुड़तीं भी नहीं। एक सीधापन, एकपन, और उस एकपन में भी जाने कहाँ की मज़बूती और मोटाई। वे भद्दी हो जाती है डाक्टर ! और मेरा हाथ काँपने लगता है।

—मैं बहुत कमज़ोर हूँ डाक्टर ! सहारा चाहती हूँ, और मेरा काछी नौकर मुझे दूर तक टहला ले आता है, पर वह पागल है—ठीक मेरी रेखाओं की तरह; स्वस्थ, सीधा और शायद भद्दा भी। वह कुछ भी नहीं बोलता, पर हाँ, वह फूल सुंदर लाता है। कल उसने कहीं से सुन लिया कि ठाकुर की फुलवाड़ी में बहुत अच्छे सफ़ेद गुलाब हैं। बड़े सबेरे ही वहाँ गुलाब लेने पहुँच गया। अंदर घुस कर जैसे ही उसने दो-चार फूल तोड़े कि, बगल वाली केतकी की झाड़ी में से आवाज़ आयी, "मुझे छोड़ दो....!" और फिर एक स्त्री की निस्सहाय चीख में बदल गयी। वह काछी कब मानने वाला, कूद-फाँद कर वहाँ पहुँच गया। देखा, तो ठाकुर का पहलवान दरबान एक माली की लड़की को ज़बरदस्ती झाड़ी की तरफ खींच रहा है। काछी को देखते

ही, पहले तो उसे काठ मार गया, फिर एकाएक सँभल कर उसने इसे गाली देना शुरू किया और लड़की फूट-फूट कर रोने लगी। काछी नौकर के गुस्से को कौन रोकता ! उसने लपक कर दरवान की गरदन पकड़ी और ज़मीन पर दे मारा। खूब पीटा....खूब, डाक्टर ! बाद को बहुत लोग इकट्ठे हो गये। बात भी खुल गयी और ठाकुर का सिर लज्जा से झुक गया। वे अपने बचपन से पाले हुए दरवान को निकालना चाहते थे। पर उसने जा कर न जाने क्यों कह दिया कि "फूल के लिए वह मुझसे लड़ पड़ा था और कोई बात नहीं थी।"

जब मैंने पूछा कि "तुमने क्या कर दिया ?" तो उसने तनिक मुस्करा कर कहा, "अब वह ऐसा नहीं करेगा। और उसने बड़े उत्साह से मुझे ठाकुर की बाड़ी के फूल दिये।"

—पिता जी उस पर नाराज़ थे और कह रहे थे, "यह बेकार ही बड़े लोगों से झगड़ा मोल लिया करता है, इसे नौकरी से निकाल दूंगा पर मैंने उन्हें रोक दिया है।"

—उसके कंधे बड़े मज़बूत हैं....तुमसे भी अधिक—ठीक लोहे की तरह डाक्टर ! उसका शरीर भी गर्म है, पर न जाने क्यों उसे छूने पर मैं काँपने लगती हूँ। मुझे बड़ा डर लगता है डाक्टर !

पत्र पढ़ कर मेरी आँखें बंद होने लगीं। लगा, जैसे धरती में धड़कन आ गयी है और उसका पिंड बेतहाशा डगमगा रहा है। मैंने दोनों हाथों से अपना माथा थाम लिया।

मीनू घबरा गया, "बीमार लड़की जीती है न !"

मैं कुछ भी नहीं बोला।

मीनू कहने लगा, "बड़ी बहादुर लड़की थी भैया ! याद है न, उस दिन शायद कोई दूज का त्योहार था और बीमार लड़की तुम्हें टीका करने आयी थी।"

"याद है मीनू !" मैंने बात टालने के लिए कह दिया। पर मीनू माना नहीं, कहता गया, "तुमने कह भर दिया था—शायद मज़ाक ही में, कि हम भारतवर्ष के रहने वाले वीर संतान हैं। यदि कोई टीका करे तो खून से करे ! मैं हँस ही रहा था भैया ! पर उसने तो उस दिन जो किया, वह सोचा भी नहीं जा सकता। यहीं न, हाँ यहीं, एक छुरी पड़ी थी, उसने अपनी कोमल गदोरी कितनी बेदर्दी से चीर दी। मैं तो चिल्ला उठा था पर वह लगातार हँसती रही और उसने कहा था, 'मैं भी वीर पुत्री हूँ, डाक्टर ! मेरा भी जन्म इसी देश में हुआ है।' और उसने उस ताज़े रक्त से तुम्हें टीका किया। तुम भी तो घबरा गये थे, और उसका हाथ खींच कर अपने होंठों से सटा लिया था और रुआँसे हो कर कहने लगे थे, 'यह क्या कर लिया तुमने नीहार !'

"लेकिन वह विचलित नहीं हुई और कहने लगी, 'यही वीर पुत्र हो !' और देर तक तुम्हारे पास बैठी रही। कैसी मनोहर लड़की थी। हर समय जैसे किसी जलती हुई शमा-सा तेज़ उसके चेहरे से फूटा करता था।"

"अब भी फूटता होगा मीनू !" मैंने उसी मुद्रा में कहा। मीनू हकबका गया।

तब तक पड़ोसी स्त्री बड़े वेग से घर में घुसीं ! उनकी मुद्रा अजीब थी। सिर के बाल बिखरे थे। आँखें एक अजब-से संदेह और क्रोध-भरी चेतना के कारण फैली हुई थीं। बात निकलते-निकलते रुक जाती थी।

उन्होंने पूछा, "नीहार का कोई पत्र....!"

"हाँ, दो आये हैं !" मैंने दोनों पत्र उन्हें दे दिये।

पत्र पढ़ते-पढ़ते वह बड़बड़ायीं, "काछी नौकर....काछी....!"

फिर एकाएक रुक कर कहने लगीं, "घर से तार आया है...."

मैने उतावली में पूछा, "नीहार कैसी है !"

"अच्छी है।" उन्होंने बड़ी तेज़ी और लापरवाही से कहा और चली गयीं।

मैं बड़ी परेशानी में पड़ गया था, पर बात साफ़ हो गयी। नीहार का पत्र आया है, जिसमें केवल दो रेखाएँ हैं। आदि-अंत हीन और समानान्तर, जो कभी नहीं मिलतीं, जो एक भौतिक अनंतता की ओर संकेत करती हैं।

मीनू पूछता है, "बीमार लड़की जीती है न !"

"हाँ मीनू ! वह जीती है।"

रामलाल

सातवें दिन रामलाल रसोई घर के सामने गया। भीतर से मिट्टी के तेल के चिराग की बदबू और गोहरी का धुआँ कोठरी के सँकरे, काले दरवाज़े से निकल रहा था। उसने सोचा बैठें, पर न तो वहाँ पीढ़ा ही था, ना हाथ-मुँह धोने के लिए पानी ही। उसे एका-एक सरूपा की याद आ गयी और वह सोचने लगा कि वह किस तरह खाने के समय, चौके में से बाहर निकल कर ठहर लीप देती थी और पानी ले कर खड़ी हो जाती थी। इतना ही नहीं, वह सुना करता था, कि वह अपनी बहू को कभी भी रसोई में नहीं घुसने देती थी। सारे गाँव में यह खास चर्चा थी। जवान स्त्रियाँ जब एक साथ बैठतीं तो बात चलती कि, "जा कर देखो तो सरूपा को, वर्ना बहू आयी नहीं कि सास का क्या पूछना? शुरू कर दिया चिलम भराना, पैर में तेल लगवाना। बात-बात में मुँह-जली, कलमुँही कह देना तो मामूली बात है। पर वाह रे सास, कि आज तक फरा फूल भी तोड़ने को नहीं कहा।"

गाँव की वृद्ध औरतों में सरूपा के प्रति दया के भाव थे। वे कहतीं, "बेचारी घर भर की सेवा ही में अपनी जिन्दगी खपाये दे रही है। राम जाने, उसने सुख तो जिन्दगी में देखा ही नहीं। यह तो कहो कि पति नेक मिल गया है कि बेचारी का बेड़ा पार लगा जा रहा है। इतने दिनों पर बहू भी आयी तो, उसका क्या कहना। रात-दिन सिंगार-पटार ही में लगी रहती है। भाई, आज-कल के बेटों-बहुओं से कुछ फायदा नहीं। बूढ़ी सास तो घिस-घिस कर मरे और बहू रानी बन कर बैठी रहे।" रामलाल कुछ क्षण के लिए अपने को भूल ही गया था, पर उसे याद आया कि आज सरूपा नहीं है, यह तो उसकी स्मृतिमात्र है, तो उसका हृदय एक असह्य पीड़ा से भर उठा और वह उठ कर बाहर चला आया। उसका मन एक बार फिर सरूपा को पा

लेने के लिए पागल हो उठा, परन्तु वह तो अब उसके जीवन से बहुत दूर हो चुकी थी।

कई दिनों से उससे कोई नहीं बोलता। सरूपा के मरने के एक-दो दिन बाद तक तो लोगों ने उसे खाने-पीने के लिए मनाया, ढाढ़स बँधाया पर जब उस पर किसी की भी बात का प्रभाव नहीं हुआ तो लोगों ने सोचा, जब भूख लगेगी तो स्वयं खाना खाएगा।

खपरैल से सटी चौपाल ही में वह सोता था। इधर रात में वह देर तक जागता रहता था। एक भयानक खामोशी, जिससे ज़िन्दगी की तरफ़ से अविश्वास, निराशा और ग्लानि हो गयी थी; उसके दिल पर प्रेत की तरह छायी रहती थी। वह टूटी चारपाई में पड़ा-पड़ा अंधकार में कुछ देख लेने की कोशिश किया करता था।

रात के दूसरे पहर में जब घर के सभी लोग खाना-पीना करके अपने-अपने घरों में चले जाते तो आखिर में रामलाल की बहू खाना खाती, और सारे जूठे बर्तनों को इकट्ठा करके सनहकी में डालने के लिए ले जाती।

उसके क़दमों की आवाज़ के साथ, उसके थके हुए पायलों की स्वर-ध्वनि रामलाल के कानों तक पहुँचती। रामलाल एकाग्र हो कर उसे सुनने लगता, फिर जब बर्तनों को माँज कर वह अपनी बड़ी सास, यानी रामलाल की भामी के पैर दबाने जाती तो रामलाल साफ़-साफ़ सुनता कि उसकी भाभी कह रही है—

"बहू, तुम्हारी तो जवानी-बुढ़ापा कुछ जान ही नहीं पड़ता। एक हम लोगों का समय था, कि हाथ-पैर में बिजलियाँ दौड़ा करती थीं। देखो, मेरे पेट में बड़ा दरद हो रहा है, जरा चिलम भर के लाओ, तब पैर में हाथ लगाओ!

रामलाल के प्राण तड़प कर रह जाते। उसके जी में आता कि जा कर कह दे, "बहू, तू जा कर सो। फिर आज से घर का कुछ भी

काम-काज न करना !" पर वह मन ही मन तिलमिला कर रह जाता। बेचारी अभी सास के मरने की बात भी नहीं भूल पायी है कि, घर का सारा काम छाती पर लद गया।

रामलाल लगातार महीनों तक बहू की यही दुर्दशा देखता रहा। उसके दिल को एक ऐसा गहरा सदमा पहुँचा कि वह प्रायः बहू की ही बात सोचा करता। उसके जी में आता, काश ! वह उसे एक बार देख लेता, उससे बातें कर लेता तो उसे संतोष हो जाता। आखिर वह क्या सोचती होगी।

वह जब खाना खाने जाता तो रसोई के ठीक दरवाज़े पर ही बैठता। वह गीले ईंधन को फूँकते-फूँकते परेशान हो जाती और उसके रूखे बाल बार-बार लटक कर आग के पास तक पहुँचने लगते। रामलाल से देखा नहीं जाता और वह खाना बीच ही में छोड़ कर उठ जाता।

धीरे-धीरे यह बात उसकी भाभी को खटकने लगी। उसने बातों-बातों में कहना भी शुरू कर दिया कि "बहिनी ! बहू को कोई ऐसे आँख तरेर-तरेर कर नहीं देखता। अच्छा हो कि इनकी शादी जल्दी से कर दी जाए, वर्ना लच्छन बड़े खराब हैं।" धीरे-धीरे बात बढ़ती गयी। फिर जब घर ही के लोग कहने लगे तो बाहरी तो मज़ा लेना ही चाहते हैं। फल यह हुआ कि बात गाँव में फैलने लगी।

इधर एक दिन मेहमानों के आ जाने के कारण, घर में काम ज्यादा हो गया और बहू रात को बहुत देर तक खिलाने-पिलने में लगी रही। अंत में जब एक बजे के करीब खाली हुई तो सास ने सेवा के लिए बुलाया। रामलाल अपनी चारपाई पर पड़ा उसी की ओर देख रहा था। बेचारी थक कर चूर हो गयी थी। अतएव काम से खाली हो, हाथ-पाँव धो कर अपने घर में गयी और जैसे ही बैठी होगी कि बड़ी सास ने गालियाँ देनी शुरू कर दी। मन की जलन बढ़ ही रही थी,

उसने चुन-चुन कर ताने देने शुरू किये। रामलाल सुनता रहा, पर जब उसने कहना शुरू किया कि "ससुर से आँख मिलती है, बदमाश कहीं की! और काम करते हुए थक जाती है।" फिर उठ कर उसकी ओर झपटी तो रामलाल से देखा नहीं गया और वह उठ कर अपनी भावज के पास पहुँच गया। गुस्से से उसका शरीर काँप रहा था पर उसने अपने को क़ाबू ही में रखा। उसे देखते ही भावज का पारा और चढ़ गया और वह चिल्ला-चिल्ला कर गालियाँ देने लगी। रामलाल का दिल टूट गया और वह उसे चिल्लाता छोड़ कर लौट आया।

सारे गाँव में रात की पूरी घटना फैल गयी। जिसे देखो वही कह रहा था, "अरे भाई, आदमी का कौन चलावे, कब क्या सोचने लगे और कब क्या कर बैठे। जब तक बीबी थी, उसके पीछे लगा रहता था, अब तो पतोहू पर ही डोरे डालने लगा।" औरतें तो रामलाल को फूटी आँखों भी देखना पसंद नहीं करती थीं और मुँह फेर कर सीधे घर में घुस जातीं। लड़कियाँ उसकी छाया से चिढ़ने लगीं।

घर की हालत बिगड़ गयी। भाभी के साथ-साथ बड़ा भाई, लड़का; सभी रामलाल से बिगड़ उठे। एक दिन रात में जब बहू लड़के के पास गयी तो उसने बुरी तरह डाटा। बहू ने उसे समझाने-बुझाने की बड़ी कोशिश की, पर लड़के के दिल का चोर न निकला और उसने उसे बुरी तरह पीट कर अलग कर दिया।

इन बातों से रामलाल को बड़ा सदमा पहुँचा। वह प्रायः घर के बाहर ही रहने लगा। उसका उभरा हुआ सीना, जिस पर जगह-जगह माँस की कड़ी गुठलीदार मछलियाँ पड़ गयी थीं, सूख गया। तेज़ आँखें मुरझा गयीं और फूले-फूले गालों पर झुर्रियाँ पड़ गयीं। पहले रामलाल चौधरी रामधनी के यहाँ बहुत बैठता था और वहीं हुक्का-पानी भी हुआ करता था पर अब, जब वह वहाँ जाता तो प्रायः बच्चे उसे देख कर बाहर न आते। चौधरी वगैरह भी अपनी बातों में लगे

रहते। कोई उससे सीधे मुँह बात भी नहीं करता। जहाँ वह गाँव की मस्त और हँसोड़ मंडली का राजा समझा जाता था, जहाँ उसे अपने बीच पा कर लोग फूले नहीं समाते थे, वहीं अब उसकी ओर देखना भी नहीं पसंद करते और हद तो तब हो गयी जब चौधरी ने चिलम हुक्के से उतार कर उसे थमायी। उसने चिलम पटक दी और वहाँ से गुस्से में उठ कर चला गया। चौधरी बोल नहीं सका, पर मन ही मन जलभुन कर रह गया।

रामलाल उस दिन बाहर ही घूमता रहा। रात को जब आसमान की अँधियारी ने धरती को अपनी गोद में छिपा लिया, तो वह धीरे-धीरे गाँव की ओर बढ़ा। अब वह चाहता था कि उसे कोई देख भी न सके। आत्महत्या और गाँव को हमेशा के लिए छोड़ देने की बात बार-बार उसके मन में उठने लगी। पर गाँव की सोंधी, नरम मिट्टी का मोह बार-बार उसे सताता और वह अपने निश्चय से डिग जाता। अपने मन को बार-बार इन बातों से दूर कर देने की कोशिश करता हुआ वह गाँव में घुसा ही था, कि जग्गी कहार ने उसे देख कर अँधेरे में पहचानने की कोशिश करते हुए सलाम किया। रामलाल को जैसे सहारे के लिए एक तिनका मिल गया, और अब वह उसी के सहारे अपनी मानसिक तकलीफों को कुछ देर के लिए भूल सकता है क्या? पर उसे यह पता नहीं कि यह तिनका शायद उसका भार सँभाल न सके।

जग्गी ने कहा, "काहे उदास हो बाबू!"

एक बार रामलाल के जी में आया, वह जवाब न दे और आगे बढ़ जाए, पर जग्गी उसके पीछे पड़ गया।

"राम कसम बाबू, जो न बताओ।"

"बता के क्या करूँगा जग्गी! उसकी दवा तुम्हारे पास नहीं है।"

"पहिले तुम बताओ भी तो!" जग्गी ने मुँह फैला कर याचना

के स्वर में कहा। रामलाल भावुक हो चला था। उसने बड़े दर्दनाक स्वर में कहा—

"जग्गी, दुनियाँ में दुख की भी कोई दवा है?"

"दुख! अरे बाबू यह तो साला रोज ही हम लोगों के सिर पर चढ़ा रहता है।"

"फिर कैसे जीते हो जग्गी?"

"यही बाबू, छान लिया एक अद्धा, फिर क्या है?" जग्गी ने गंभीरतापूर्वक कहा। रामलाल की आँखें फैल गयीं, और वह कह उठा—

"दुख उससे कम हो जाता है, जग्गी?"

"कम कहते हो बाबू? उड़ जाता है, उड़!"

और जग्गी ने उस दिन रामलाल को अपने घर में ले जा कर खूब शराब पिलाया। थोड़ी देर बाद, जब रामलाल के ऊपर नशे का पूरा प्रभाव हुआ तो उसकी गहरी काली, बुझती हुई आँखें सुर्ख हो गयीं। उसके पाँव थरथराने लगे, और होठों पर एक भारी वज़न-सा महसूस होने लगा। उसने जग्गी से लड़खड़ाती ज़बान में कहा, "तू मेरी बहू के पास जा कर उसे यहाँ बुला ला! आज मैं आखिरी बार उसे समझाऊँगा...." जग्गी कुछ भी नहीं जानता था। उसे विस्मय हुआ कि ठाकुर क्या कह रहे हैं। फिर वह कैसे उनके घर जा सकता है? कैसे उनकी बहू यहाँ आ सकती है? पर वह मनोयोग पूर्वक उनकी बातें सुनता रहा। रामलाल कहता गया—"....तू घर का काम छोड़ दे, भाभी के पैर दबाना छोड़ दे और रात को इतनी देर तक जागरण न किया कर, और यदि तुम्हें कोई कुछ कहे तो उससे कहना कि मैं....कि ....मैं...." कहता हुआ वह उठ बैठा और अपनी जेब से एक बड़ा-सा छुरा निकाल कर, उसे खोल लिया। जग्गी के प्राण सूख गये। उसने सोचा कि अब तो मैं बेमौत मरा। गाँव तो छोड़ना ही पड़ा। लोग

कहेंगे, "साला, ठाकुर को अपने घर में बैठा कर शराब पिलाता है।" रामलाल बकता रहा...."मैं ढोलक बजाऊँगा। ला बे, जरा दो-दो हाथ हो जाए।" और न जाने क्या-क्या।

धीरे-धीरे उसकी ज़बान टूटती गयी। जग्गी सोच ही रहा था कि चलो जान बची, तब तक रामलाल एकाएक होश में आया और घर की बातें फिर उसे याद आ गयीं। उसने गुस्से में उठते हुए कहा, "क्यों बे, अभी नहीं गया।" और वह लड़खड़ाते हुए उठ खड़ा हुआ। जग्गी के काटो तो खून नहीं। धीरे से उठा और दालान की साँकल बाहर से लगा कर चलता हुआ।

बाहर अभी कालिमा गाढ़ी नहीं हो पायी थी। चौपाये चरहियों पर लगे खा रहे थे और लोग तेज़ी से इधर-उधर आ-जा रहे थे। जग्गी कुछ देर बाहर खड़ा सोचता रहा फिर जा कर रामधन की चौपाल में चिलम पीने लगा!

रामलाल थोड़ी देर तक चुप रहा फिर सिर के चक्कर और एक अजीब-सी खुमारी और धुंध से परेशान हो कर नार की कली की बनी चारपाई पर लेट गया। खपरैल के बिना रोशनदान के चौपाल में काफ़ी अँधेरा हो गया था। हाथ को हाथ भी नहीं दीख पड़ते थे। रामलाल बहुत देर तक उसी अँधेरे में आँखें फाड़-फाड़ कर देखता रहा। उसे बार-बार सरूपा की याद आयी, चली गयी। घर का ख्याल आया और मिट गया। बीच-बीच में वह कुछ बकने भी लगता था पर वहाँ कोई सुनने वाला न था। धीरे-धीरे उसकी चेतना डूबती गयी और वह बिलकुल बेहोश-सा हो कर उसी चारपाई पर सो गया।

जब रात बहुत बीत चुकी तो रामलाल को होश आया। शराब का नशा कुछ हल्का हो रहा था, जोश उतर चला था। उसका उदास मन कुछ क्षणों के विश्राम के बाद, एक विस्मृति के दरवाज़े से गुज़र चुका था। उसकी जलती हुई कामनाएँ कुछ ठंडी पड़ चुकी थीं। वह

जाग रहा था और उस घने अँधेरे में अपने को, अपनी बातों को और अपनी हालत को ठीक-ठीक समझने की चेष्टा कर रहा था। उसे कुछ भी पता नहीं लग रहा था कि वह कहाँ है। तब तक जग्गी दरवाज़ा खोल कर डरते-डरते अंदर घुसा। उसने उसे पहचान लिया और उसका मन एक वितिष्णा से भर गया—छिः, वह एक कहार के घर में इस तरह शराब पी कर पड़ा है। भला वह क्या सोचता होगा? वह उठने को ही था कि जग्गी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा,"बाबू! वे तो नहीं मिल सकीं।"

"कोई बात नहीं जग्गी!" रामलाल ने बात टालने के लिए कह दिया। उसकी आवाज़ बिल्कुल बदली-सी थी, जिसमें एक नयापन था पर अब भी नशे का प्रभाव साफ़ ज़ाहिर हो रहा था।

जग्गी के जी में जी आया और वह पाटी के पास बैठ कर धीरे-धीरे उसका पाँव दबने लगा। रामलाल को धीरे-धीरे सारी बातें याद आ गयीं और उसका मन एक पछतावे से भर गया। उसके जी में आया वह गाँव छोड़ दे, पर एकाकक घर की स्मृति से वह फिर तिलमिला उठा और एक आक्रोश से उसका चेहरा फिर तमतमा उठा। वह उठा, छुरा बंद कर, जेब में रखा और घर पहुँच गया।

घर का दरवाज़ा बंद था। उसने साँकल खटखटायी, उसकी बहू सास के पाँव दबाने में लग गयी थी। सास को लगा शायद लड़का घर में आना चाहता है और उसने कहा, "जा कर दरवाजा खोल दे और सो रह!"

बहू ने दरवाजा खोला, तो वहाँ रामलाल—खूँख़ार, चढ़ी हुई लाल-लाल आँखें, बिखरे हुए बाल और अस्त-व्यस्त कपड़े। देख कर वह काँप उठी। उसके हाथ से चिमनी छूट गयी और डर से उसके मुँह से एक चीख फूट पड़ी। रामलाल भी डर कर पीछे हट गया। पर दूसरे ही क्षण वह उसके पास पहुँच कर, उसे सँभालने लगा,"क्या हुआ बहू!

क्या हुआ ?" उसने कई बार पूछा, पर वह जल्दी-जल्दी उठ कर भागने को हुई। इतने में भाभी, भाई, लड़का, सभी जग कर वहाँ पहुँच गये और घर में एक भयानक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। भाभी ने चिल्ला कर रामलाल को पापी घोषित किया। लड़का लाठी ले कर बाप को मारने दौड़ा, और बड़े भाई ने कहा कि "इसके सिर पर पाप सवार है और कुछ नहीं।"

रामलाल के शरीर से जैसे प्राण ही निकल गये हों। आख़िर यह क्या हो गया। उसने तो कुछ नहीं किया, फिर यह क्या ? पर बात ठीक नहीं हो सकी। अंत में रामलाल ने निश्चय कर लिया, कि अब वह घर में नहीं रह सकता और उसी तरह, उसी हालत में, वह बाहर चल पड़ा।

रात का दूसरा पहर भी बीत चुका था। सूनापन बढ़ गया था और रात की आभा निखर आयी थी पर रामलाल चाहता था कि रात और काली हो जाए, जिससे इस गाँव के जीव-जंतु भी उसे न देख सकें। दूर, सिवान के एक किनारे पर जा कर उसने गाँव की ओर दृष्टि डाली, तो एक हल्के, झीने रंग की चादर से फैले वातावरण में कुछ मटियाहे धब्बे नज़र आ रहे थे। उसे लगा, वही उसका गाँव है। वह वही धरती है जिसकी मिट्टी की नरम सतह से ज़िन्दगी का अम्बार फूटा पड़ता है, बचपन चहका करता है और जवानी फूटी पड़ती है। उसकी आँखें नम हो गयीं। उसने अगल-बगल देखा तो गेहूँ और जौ के दानों से लदी हुई बालें हवा के झोंकों से झुक-झुक कर, एक बार फिर अपनी ओर देख लेने को बाध्य कर रही थी—"मैं तुम्हारी ही हूँ, रुको....!" पर रामलाल अब नहीं रुकेगा। उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा, "नहीं....नहीं।" और वह बिना कुछ सोचे-विचारे आगे बढ़ता गया।

तीन वर्ष बाद जब रामलाल ने कलकत्ते में सुना कि उसकी बहू को

गोद में ढाई वर्ष का बच्चा है, तो उसका मन फिर एक बार हर्षोल्लास से फूल उठा। गाँव के प्रति मन की सारी वितिष्णा क्षण भर में नष्ट हो गयी। एक बार फिर हरे-भरे खेत, धान-गेहूँ की बालियाँ और बाहर से चर कर लौटती हुई गायों का रँभाना उसे याद आ गया। उस रात उसे नींद नहीं आयी। रह-रह कर उसे लगता जैसे कोई नन्हा-मुन्ना उसकी छाती पर बैठा खेल रहा है। जब वह आँखें खोलता तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। उसका मन उस बच्चे को एक बार देखने को बेचैन हो उठा।

उसने कुछ पैसों का इंतजाम किया। कुछ लोगों से लिया-दिया, बहुत-से खिलौने, कपड़े, साइकिल, गुब्बारे इत्यादि खरीदे और घर के लिए चल पड़ा।

जब ट्रेन चली तो उसे कुछ यथार्थ संभावनाएँ सताने लगीं। यदि लोगों ने उसकी ओर फिर हिकारत-भरी नज़र फेरी और बोलना चालना बंद ही रखा तो....

इस 'तो' का जवाब उसके पास नहीं था। वह बार बार सोचता पर कोई रास्ता नज़र नहीं आया। वह वहाँ से लौट आएगा। वहाँ नहीं रुकेगा, पर क्यों? ऐसा क्यों? वह रहेगा और डट कर रहेगा। अपने मुन्ने के लिए रहेगा, जीएगा, और यदि लोगों ने तीन-पाँच किया तो, क्या उसका हिस्सा ज़ायदाद में नहीं है? वह घर-द्वार सब, तिल्ली-तिल्ली बाँट लेगा और बच्चे को ले कर एक अलग घर में रहेगा। खेतों पर जाएगा, तो मुन्ने को कंधे पर बैठा कर जाएगा। पीली-पीली सरसों के बीच से जाने वाले रास्ते पर घूमता-घूमता वह घर लौटेगा, और यदि किसी ने कुछ कहा तो उसका होश ठिकाने कर देगा।

रामलाल ने एक रोब-भरी निगाह खिड़की से बाहर डाली तो लगा, सारी प्रकृति हँस रही है। मिट्टी के रग-रग से मस्ती का संगीत निकल रहा है और पेड़-पौधे मस्त हो कर तेज़ी से नाच रहे हैं। उसने अपनी मूछों पर ताव दिया और सँभल कर बैठ गया।

दूसरे दिन सुबह ही वह ट्रेन से उतर कर, सीधे घर पहुँचा। मुन्ना चारपाई पर बैठा खेल रहा था। उसने उसके हाथ, मिठाइयों से और सारी चारपाई, खिलौनों से भर दी। उसे ख्याल भी नहीं आया कि घर में और भी कोई है। भाभी मन ही मन जलीं पर कुछ बोल नहीं सकीं। भाई चुप रहे। लड़का मुँह फुलाए बगल से बार-बार निकल गया। बहू ने घूँघट के नीचे से देखा तो मुसकुरायी, प्रसन्न हुई पर कहीं कोई देख न ले, इसलिए शीघ्र गंभीर हो गयी।

रामलाल मुन्ने के साथ ही रहने लगा। बहू तेल-उबटन लगा कर उसे उसके पास भेज देती, और वह उसे दिन भर ले कर घूमा करता। अब भी रामलाल को देख कर गाँव वाले आँखें फेर लेते, पर उसे इतना समय नहीं था कि वह उनसे बातें करे या उस पर सोचे।

उसका बच्चे के इतने क़रीब हो जाना, सब से बुरा लगा उसकी भाभी को। अब तक तो बच्चे को देख कर, वह उसे उठा लेती, सुलाती पर अब उसे रोता देख कर कहती, , "ले न जाओ! बैठे तो हैं टाँग तोड़ कर इसी के लिए। अब तो खेती-बारी करनी नहीं। बस मिल गया है एक बबुआ, उसी में जूझ रहे हैं। किसको इतना जाँगर है कि मर-मर कर खिलाएगा।"

रात को रामलाल के लड़के को भी भाभी बड़ी-बड़ी सलाहें देतीं। पहले तो उसे इतना अधिक काम करने से रोकतीं, फिर बाप के खिलाफ़ तरह-तरह की बातें कह कर भड़काया करतीं।

धीरे-धीरे फिर विष फैलने लगा। एक दिन बच्चा भूखों रो रहा था। बहू ने बहुत कोशिश की पर वह चुप न हुआ—वह भूखा था। बहू ने जा कर मटकी में से दूध निकाल लिया और पिलाने लगी। अब क्या था? रामलाल की भाभी के मलिकाने पर धक्का लगा और वह ज़ोर-जोर से चिल्ला कर गालियाँ बकने लगी।

"बदमाश कहीं की, चली है मालकिन बनने। जा कर क्यों नहीं माँगती दूध अपने बाप से, जिससे आँखें मिलाती है, जिसकी राह देखती

रहती है।" रामलाल बच्चे के रोने की आवाज़ सुन कर, सोच ही रहा था कि बहू अब उसे मेरे पास भेजती है। तब तक बीच में यह परपंच सुन कर फिर उसे सारी पुरानी बातें याद आ गयीं। उसे अपने बिगड़े हुए जीवन की भूमिका में एक नाचती हुई डाइन दिखाई देने लगी और वह गुस्से से पागल हो गया। उसने दौड़ कर लाठी ली और जा कर दरवाज़े पर खड़ा हो कर, चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा, "आज मैं अपनी जायदाद बाँट ही कर दम लूँगा।"

उसने घर के काम-धंधे बंद कर दिये। सारे गाँव के लोग इकट्ठे हुए। लोगों ने बड़ी आरजू-मिन्नत की, पंचों ने समझाया कि "ऐसा न करो रामलाल! आखिर अब तुम्हारे है ही कौन? तुम्हारा लड़का और तुम्हारी बहू तो तुम्हारे दुश्मन हैं ही, भाई-भावज की कौन कहे। फिर तुम किसे लेकर अलग रहोगे?" पर रामलाल मुन्ने को लिए घर के चौखटे पर डटा रहा।

लड़का खेत पर था, बड़े भाई ने कोई बात चलती न देख उसे बुलवाया। वह दौड़ा हुआ आया और गुस्से से तड़प कर, बाप की ओर झपटा लोगों ने बहुत समझाया, तो उसने कड़क कर कहा, "तुम किसे ले कर अलग रहना चाहते हो, तुम्हारा यहाँ कौन है?"

रामलाल के हाथ में लाठी ढीली पड़ गयी। उसने मुन्ने को सँभालते हुए कहा कि "मैं अपने मुन्ने को ले कर रहूँगा।"

उसका चेहरा एक विश्वास से तमतमा उठा। लगता था, रामलाल आज सारे संसार की ज़िंदगी का भार अपने कंधे पर ले कर, अकेले ही चलना चाहता है। सारा गाँव खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा था, किसी को कुछ भी बोलने की हिम्मत न पड़ती थी।

लड़का यह कहते हुए लपका, "वह तुम्हारा लड़का नहीं, मेरा लड़का है।" और बेरहमी से बच्चे का हाथ खींच कर, रामलाल से अलग कर दिया। मुन्ना चीख उठा। रामलाल के पाँव उठे, पर रुक गये। गुस्से से चढ़ा हुआ रक्ताभ शरीर, स्याह पड़ गया। आँखें झुक गयीं और एक भयानक अँधेरा उसके चारों ओर छा गया।

संगीत, आँसू और इंसान

ट्रेन में भीख माँगना, बाहर भीख माँगने से बिल्कुल भिन्न है। बाहर थोड़ी दुआएँ ही काम दे जा सकती हैं, थोड़े सुपरिचित नारे और हाथ फैला कर गिड़गिड़ाने ही से काम चल सकता है, पर ट्रेन में तो भीख माँगने के साथ भी एक आर्ट की ज़रूरत पड़ती है। यदि कोई भीख माँगने वाला गाना नहीं जानता, तो उसे ट्रेन में पैसा पाने की आशा नहीं करनी चाहिए। संगीत के महत्त्व और सुर-ताल की विशेषता के लिए नहीं, मानसिक आनन्द और क्षणिक मनोरंजन के लिए भी नहीं, बल्कि पेट के लिए लाचार इंसानों का अलाप, स्वर का चढ़ाव-उतार और गानों के चुनाव ख़ास महत्व रखते हैं। यात्रियों की पसंद और सामयिकता का भी वहाँ पूरा ध्यान रखा जाता है। यदि किसी बाजे के साथ-साथ, यात्रियों में घूमने और उनको समझने की आदत पड़ चुकी हो तो क्या कहना है ?

बरकत के पास, जो चाहिए सब है, यहाँ तक कि एक बाईस वर्ष की लड़की भी, जो रेलवे के भिक्षुक समाज की गुर है। वैसे तो स्त्रियाँ हर जगह उपयोगी होती हैं पर टुटही दुकान, बुकिंग आफिस, रेस्ट्राँ इत्यादि में तो इनकी उपयोगिता, सोने में सुहागे का काम करती है। थोड़े ही दिन में आमदनी का हिसाब दूने पर चलने लगता है।

बरकत एक लाइन पर ज्यादा दिन तक नहीं चलता, यानी लाइनें बदला करता है। पहले वह अकेला था, लेकिन अपने इसी दौरान में उसने आसाम की भुखमरी का एक प्रसाद पा लिया। वह बहुत चाहता था कि पैसे जुटें तो कहीं से बेच-खोच का हिसाब बैठा कर वह एक लड़की प्राप्त करे; पर कहा है, जिसे ईश्वर देता है छत फाड़ कर देता है। उसने देखा कि ईश्वर भी कितना नेक और दयालु है कि चार

आने पैसे का खाना खिलाने पर ही उसे एक कुमारी मिल गयी। उसने मन ही मन सरकार को बधाई दी और सोना को अपनी उपयोगिता के अनुसार, संगीत में दीक्षित कर लिया। सोना सचमुच उसे सोना सिद्ध हुई और उसने कितने हम-पेशेवरों की झोली खूटी से टँगवा दी। उसके एक ही दौर में ट्रेन के दानी, उदासीन, मनचले अपने सफ़र-खर्च का कोई न कोई हिस्सा, उसे ज़रूर दे देते थे। सोना का आँचल पैसों से भर जाता था और बेचारे भिखमंगे खाली हाथ लौट जाते; बरकत के वे बहुत जलने लगे थे। चाहे उनका कहीं भी मतभेद हो पर बरकत के मामले में वे सदैव एक हो जाते थे। इसीलिए प्रायः बरकत लाइनें बदला करता था और उसके परिचित यात्री कुछ दिनों तक उसकी कमी महसूस किया करते थे।

बरकत रुपया बैंक में जमा नहीं करता, न तो सोना के लिए चमकीली सड़ियाँ ही खरीदता है। हाँ, वह अब हौली में जा कर नहीं पीता, बल्कि वहाँ से बोतलें, नमकीन, कभी-कभी भूनी कलेजी ख़रीद कर; किसी पेड़ के नीचे, किसी सड़क के फुटपाथ पर, किसी मस्ज़िद की साया में, या किसी छिटकी हुई चाँदनी के आँचल में खूब पीता है और सोना को भी पिलाता है। फिर सोना के जवान और गर्म होठों को अपने होठों से दबा कर सो रहता है। इधर उसने एक चीज़ नयी की है, वह यह कि अपनी टूटी हारमोनियम को एक कबाड़े के यहाँ दे कर, एक सेकेंड हैंड हारमोनियम ख़रीद ली है, जिसे वह धोती के किनारे से अपनी गरदन में लटका लेता है। सोना अब खुशी-खुशी गाती है। क्योंकि उसकी आवाज़ पहले वाली हारमोनियम में नहीं डूब पाती थी और इस हारमोनियम में डूब जाती है। गाते-गाते जब वह मुसकुरा कर बरकत की ओर देखती हुई, बाजे पर अँगुलियों से ताल देने लगती है तो बरकत की भौंहों पर बल पड़ जाता है, और वह फिर उदास हो कर चेहरे पर लाचारी के भाव जगाने के लिए बार-बार पलकों को झिटकती है। गालों पर सिकन ले आने की कोशिश करती है, आँखों के पपोटों

को सिकोड़ लेती है और आवाज़ में एक अज़ीब-सी बेकसी भरने लगती है। क्योंकि यही भीख माँगने के नुस्खे हैं, जिन्हें बरकत ने कितनी बार बुरी तरह पीट-पीट कर उसे सिखाया है। फिर एकाएक उसे याद आ जाता है—जब बरकत गरम सड़सों से पीट कर, उसके गालों पर अपनी कड़ी अँगुलियों के निशान बना कर, उसके लंबे, काले बालों को बेदर्दी के साथ नोच-खसोट कर ट्रेन की ओर बढ़ा करता था और रात के आठ-दस बजे तक, वह उसी पीड़ा में लाचार चिल्ला-चिल्ला कर गाते गाते थक कर मुर्दा-सी हो जाया करती थी। शाम को लौटते हुए वह कहता, "अब तू ठीक काम करने लगी है, जानती है, यह बड़े मसक्कत का काम है। या तो आदमी होशियार हो, हमेशा अपने को याद रख सके, या तो दूसरा तरीका वही है, जो मैं तुम्हारे साथ करता हूँ। एक गहरी कुफ़्त तो चेहरे से ज़ाहिर होनी ही चाहिए।" और वह उसके आँचल से पैसे बटोर कर दूकान की तरफ़ बढ़ जाता। फिर वही शराब, वही शरीर की गरमाहट, वही बेफिक्री।

थोड़े दिन हुए बरकत और सोना के साथ एक बच्चा भी देखा जाने लगा है। बरकत को इससे कोई विशेष खुशी नहीं हुई थी लेकिन जब बच्चा हो गया तो उसने एक आराम की साँस ली, क्योंकि इधर कुछ दिनों से सोना जोर-ज़ोर से गाने में थक जाया करती थी और एक बार पूरी ट्रेन पर घूमने में उसे कई जगह बैठना भी पड़ता था। पैसे भी कम मिलने लगे थे क्योंकि सोना का स्वर पैसों के मोल के लिए काफ़ी न था। रात में जब बरकत शराब की बोतलें खोलता तो सोना नाराज़ हो जाती और उसके कड़े, चिपटे-हाथ इतने सूखे और खूँखार लगते कि वह उसकी बिस्तर की साथिन न बन पाती। रह-रह कर उसके कानों में एक अजन्मे शिशु की किलकारियाँ गूँजने लगतीं और स्त्रीत्व एक अज़ीब से सुहावने संगीत में लय हो जाता। बरकत को तो एक नशा की पूर्ति के लिए दूसरा नशा चाहिए था, उसे इतना ज्ञान कहाँ? उसने कई दिन सोना को बलपूर्वक अपने सीने से लगा कर,

बेदर्दी से भींचना चाहा, पर सोना अलग हो गयी। उसने बचपन ही से सुन रखा था कि जब बच्चा होने के करीब हो, तो स्त्री को पुरुष के साथ नहीं सोना चाहिए। पर बरकत की वासना तो अंधी थी, उसने कई दिन उसे नशे में बुरी तरह पीटा और उसके हताश और थके हुए शरीर को पैरों की ठोकर से अलग कर दिया। सोना पेट, पेड़ू और पीठ के नीचे के मेरुदंड भाग को बचाते हुए सब जगह उसकी मार सहती रही, लेकिन कुछ बोली नहीं। बरकत ने फिर होली में जा कर पीना शुरू कर दिया। कभी-कभी तो रात-रात भर सोना को किसी पेड़ के नीचे छोड़ कर, वह शराब पीने जाता और वहीं कहीं बेहोशी में पड़ा रह कर रात बिता देता।

कई दिन तक तो उसे अकेले ही ट्रेन में जाना पड़ा। वह गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाता, गाता, पर न जाने क्यों वह लोगों को अपने गाने की तरफ़ नहीं खींच पाता था। पैसे बहुत कम मिलने लगे थे। उसकी समझ में कुछ नहीं आता था। कभी-कभी तो उसके जी में आता, वह सोना को छोड़ कर चला जाए और किसी दूसरी लड़की को ले आए, पर वह यही आशा लिए रुका रहा कि अब सोना फिर ठीक हो जाएगी। उसका स्वर काम करने लगेगा और उसकी गोद में नन्हा-सा बच्चा देख कर लोगों की करुणा और जगेगी। पर उसके मनोरथ पूरे नहीं हुए। क्योंकि जब सोना ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर गाने लगती तो बीच में उसका गला फट जाता और लड़का ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर रो पड़ता। फिर सोना बीच ही में गाना छोड़ कर, अपनी दूध से कसी हुई छातियों को उसके मुँह में डाल देती और फिर गाना गाने लगती।

बरकत की परेशानियाँ बढ़ती जा रही थीं। कितना अच्छा गाना क्यों न हो, वह अब यात्रियों की दया और सद्भावना को नहीं जगा पाता था। बीच-बीच में सोना का अपने लड़के में उलझ जाना और राग का धीमा कर देना, बरकत को एक भयानक झुँझलाहट से भर देता था। इधर बरकत को मीरा का एक नया गीत मिल गया था—

'पग घुँघुरु बाँधि मीरा नाची' और वह सोचने लगा था कि शायद उसके पुराने राग अपनी मोल से अधिक बिक चुके, अब उसे नये राग ढूँढ़ने चाहिए। किसी ने उससे बताया कि यदि वह सिनेमा के गाने गावे तो उसकी आमदनी बढ़ सकती है। उसने वह भी किया और एक नयी तैयारी के साथ ट्रेन पर जाने लगा, पर बच्चे का बीच-बीच में रो देना, उन्हें कभी जम कर गाने नहीं देता था। यद्यपि सोना के पास यह कहने को हो गया था कि, "बाबू, गरीब बच्चे के लिए!" और वह अपने होठों के अगल-बगल एक अजीब-सी सिकुड़न बना कर, दाँतों को निकाल देती थी। लोग उसे कुछ-न-कुछ दे देते थे पर वह बरकत की बोतल भर को भी नहीं होता था।

इधर एक दिन दोनों दिन भर मेहनत करते रहे पर एक पैसा न मिला। शाम को थक कर, दोनों एक तीर्थ-यात्रियों के डब्बे में घुसे। कुछ टीकाधारी पंडित भजन में तन्मय थे, उन्होंने बरकत को देखते ही अपने कीर्तन का स्वर ऊँचा किया और उन भिखारियों की आवाज़ को भगवान तक पहुँचते देख, उन्हें जलन-सी होने लगी। कई लोगों को बुला कर उन्होंने कीर्तन में शामिल कर लिया था, पर बरकत दूने जोश से गाने लगा। अंत में उन लोगों को चुप होना पड़ा। सोना का मधुर स्वर, जो दिन भर की थकन के बाद शिथिल और करुण हो गया था—एक बेबसी के साथ दूसरों के लिए भक्ति-भाव का प्रतीक बन उठा। सब लोग कान लगा कर सुन रहे थे। बरकत सबके हाथों की ओर देख रहा था। कितनों के हाथ जेबों में गये, बाहर आये, फिर गये पर इसी समय बच्चा खाँसने लगा और एकाएक उसके मुँह से माँ का दूध बाहर आ गया। बगल में एक बड़ी-बड़ी मूछों वाले टीकाधारी बैठे हुए थे, दूध के छींटे उनके ऊपर पड़े और वे तड़क उठे। सारे डब्बे में शोर-गुल मच गया। उन्हें तो छूत लग गयी थी, परलोक बिगड़ा जा रहा था। पर दूसरे लोग भी कहने लगे, "राम-राम, बड़ा अनर्थ हो गया पंडित जी! कहीं पानी ढूँढ़ कर कपड़े तो बदल लीजिए!" एक काले

रंग की चपटी नाकों वाली औरत बैठी थी, उसने कहा, "बच्चन का दोख नहीं होता महराज !" पंडित जी बिगड़ गये, "चल-चल, दूर हट, तो चली है वेद पढ़ाने !" और वह चुप हो गयी। पंडित जी ने सोना और बरकत को स्टेशन पर डब्बे से बाहर कर दिया।

बरकत उस दिन डब्बे से बाहर निकला तो बाहर चाँदनी छिटकी हुई थी। छोटे से देहाती स्टेशन के दूसरे सिरे पर एक बड़ा-सा तालाब था, जिसमें सफ़ेद कमलों का रंग चाँदनी के रंग में मिल गया था, और पानी की सलेटी सतह पर उनकी गहरी स्याह परछाइयाँ बन गयी थीं। बरकत और सोना एक शीशम के पेड़ के नीचे बैठे-बैठे, उन चाँदनी के फूलों को देखते रहे, पर वे फूल नहीं थे, वे तो परछाइयाँ थीं। फूल तो चाँदनी में धुल गये थे। दोनों खामोश थे। बरकत चुप-चाप बैठा रहा, बच्चा ज़ोर-ज़ोर से हाँफता रहा और सोना रोती रही।

दो दिन बीत गये पर बच्चे का हाँफना बंद न हुआ। रह-रह कर उसकी आँखें सफ़ेद हो उठती थीं। उसकी काली पुतलियाँ गायब ही उठती थीं और सोना एक भयावनी चीख में चिल्ला कर बच्चे को अपनी छाती से सटा लेती थी। लगता, जैसे कोई ज़बरदस्ती उससे उसका बच्चा छीन रहा हो और वह बकने लगती, "नहीं, नहीं, इसे मैं नहीं जाने दूँगी।" पर बरकत को इससे खीज के अलावा कुछ नहीं होता था। वह मन ही मन सोचता, शायद यह बच्चा ही हमारे जीवन की सारी तकलीफ़ों की जड़ है। इसी ने हमारी हँसी छीन ली है। इसी ने हमारा संगीत, हमारी चाँदनी; सभी छीन ली है। यह हमारा दुश्मन है, दुश्मन। और उसकी अँगुलियों में एक अज़ीब-सी हत्यारी ऐंठन होने लगती। वह उसे दबाता, छिपाता और फिर सोचता, शायद बच्चा अच्छा हो जाए।

चार दिन लगातार ट्रेन में न जाने के कारण बरकत का बचा-खुचा पैसा भी खत्म हो गया। अब वे भूखों मरने लगे पर सोना उस

नन्हें बच्चे को छाती से लगाए रोती रही। बरकत का मन कुढ़न की सीमा को पार कर चुका था। आज दिन भर वह पोखरे का चक्कर काटता रहा, फिर सोना से यह कह कर कि, मैं कुछ खाने को माँग लाऊँ, वह बाहर गया पर उसका मन जैसे गाँव में भीख माँगने में लगा ही नहीं। वह देर तक बेचैनी में इधर-उधर घूमता रहा और कुछ रात गए लौटा। सोना ने उसकी ओर देखा, लेकिन कुछ भी नहीं पूछा। बरकत समझता था, वह खाना माँगेगी पर उसने खाने का नाम तक नहीं लिया। बरकत ने इधर-उधर नज़र दौड़ायी, शीशम की पत्तियों के मटमैले निशान ज़मीन पर बन गये थे। सामने हारमोनियम पड़ी थी, जो अपनी आवाज़ से लोगों को मोह लेती थी। लेकिन उसका भी राग भूखा था—मर रहा था। सामने वही फूल, वही पानी और वही आसमान, आज बरकत को खाने दौड़ रहे थे। उसने दोनों हाथों में अपने चेहरे को कस कर दबा लिया। कुछ देर के बाद वह उठा और इधर-उधर टहलता रहा फिर एकाएक सोना के माथे को सहलाते हुए कहने लगा, "सोना! तू कई दिन की जगी है, सो जा।" सोना को विश्वास नहीं हुआ कि यह बरकत का हाथ है, पर जब उसने पलट कर देखा तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

सोना सो गयी और बरकत सिरहाने बैठा रहा। लड़के की साँसें बढ़ती गयीं। चारों ओर का वातावरण एक खौफ़नाक नीरवता से भरता गया। बरकत को पेड़ की छायाएँ और चाँदनी की नीचे फैली हुई हल्की रोशनी खाने दौड़ रही थी। रह-रह कर उसे लगता, जैसे उसके आगे कुछ है ही नहीं—बच्चा, कमज़ोर, बीमार....दुश्मन....दुश्मन.... उसका दुश्मन और उसकी अँगुलियों में वही पुरानी ऐंठन, जिसमें खूनी की-सी ताक़त, फिर लाचार, निर्जीव का-सा मुर्दापन—ढीलापन। वह सोच नहीं पाता था कि क्या करे? उसकी आँखों की नींद हराम हो गयी थी। इसी बीच एका-एक दो तीन भेड़िये और चिड़ियाँ बोल उठीं।

उसने फिर अपने हाथों को सिकोड़ा और मुट्ठियों को कई बार बाँधा-खोला और धीरे-धीरे उन्हें बढ़ाने लगा। उसके हाँथ काँपने लगे और अपने ही से पीछे लौट आये। फिर उसने साहस करके बच्चे को छुआ, उसे लगा जैसे उसके हाथों में बिजली छू गयी है—बेजान, निर्जीव। वह उठ खड़ा हुआ पर उसके पाँव लड़खड़ाने लगे। चारों ओर से काली, विशाल चट्टानें उसे पीस डालने के लिए, हवा की-सी गति से बढ़ने लगीं—उफ़ वह घुट जाएगा।

वह धम-से बच्चे के पास बैठ गया, झुक कर उसकी टँगी हुई आँखों में देखा, जिनमें एक लाचारी और बेबसी की हल्की रोशनी झाँक रही थी। उसे दया आनी थी पर उसने सोचा,—नहीं, यह तो दुश्मन की लाचारी है और उसके हत्यारे हाथों ने बिजली की-सी तेज़ी से बच्चे की गरदन को दबोच लिया। पतला, कोमल मांस का लुथड़ा छटपटाया भी तो नहीं। हाँ, उसके चेहरे पर, क्षण भर के लिए एक हल्की-सी लालिमा आयी और फिर धीरे-धीरे वह एक ठंडी सफ़ेदी में बदल गयी। उसकी उल्टी आँखें स्थिर हो गयीं। उसने हाथ हटाया तो लगा, जैसे वे धड़ से टूट कर अलग हो गये हैं, और उसके जी में एक अज़ीब-सी घबराहट पैदा हो गयी। आँखों के आगे एक भयानक अँधेरा छा गया, जिसमें अनगिनत नन्हे-नन्हे बच्चों की लाशों के सिवा, कुछ भी नहीं दीखा। उसके माथे पर पसीने की नन्ही-नन्ही बूँदें उमड़ आयीं और उसने घबरा कर सोना को ज़ोर से जकड़ लिया। सोना एकाएक उठी तो उसने बच्चे को छाती से लगा लिया, पर अब उससे जीवन के अंश उड़ गये थे। वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी और बच्चे के कोमल मुखड़े को बार-बार अपने गालों और छातियों पर रगड़ती रही, पर गर्मी फिर नहीं लौट सकी।

मुंशी जी

"चार दिन हो गये, मुंशी जी बुखार से नहीं उठे। लड़िका परानी के नाम पर एक बीबी ही तो रह गयी है बेचारे के पास, और वह भी दस दिन से बीमार है। जूस-पानी का कैसे होता होगा ? घर में एक अन्न का टुकड़ा भी तो नहीं था।"

घर-घर में मुंशी जी की बुझी चर्चा फिर से सुलग उठी।

"बड़े कपूत निकले भाई इसके लड़के, चार के चारों हट्टे-कट्टे मूसरचंद, बंबई-कलकत्ता देख-सुन रहे हैं, पर बाप-मतारी का तनिक भी धियान नहीं।" सुरसती ने मसाला पीसते-पीसते सिल पर लोढ़ा रोक दिया।

उसकी सास वहीं बैठी हुक्का पुड़का रही थी, कहने लगी, "तू जा कर दया दिखा दे! जानती भी है, यह सब भोगदंड है। सरग नरक और कहीं थोड़े है, भोग रहा है, भोग!"

सुरसती से चुप नहीं रहा गया, कहने लगी, "मैया जी! दुनियाँ में दोख-पाप किससे नहीं हो जाते, पर ऐसे भी कोई खाने बिना कलट-कलट कर थोड़े ही मर रहा है।"

"तू क्या जानेगी अभी...." सास की आँखें तमाखू के धुएँ में उड़ने लगीं.....।

—जब मैं पहली बार मैके से यहाँ आयी थी....उसने ऊपर देखा तो उसकी छोटी बखरी से धूप उड़ कर मुंशी जी की ऊँची, किन्तु भूत की तरह दाँत बाए खड़ी दीवार पर अटक गयी थी। बखरी का एक खोंप ढह गया था और उसकी नंगी काँड़ियाँ रोशनी में पीली-पीली चमक रहीं थीं।

—यह बखरी मुंशी के बाप ने पाँच महीने में बनवायो था.... मुंशी की शादी होने को थी। पतोहू आएगी तो कहाँ रहेगी ? घर बहुत छोटा था।

—रात-दिन काम लगा रहता था। दीवार के लिए यहाँ की ईंटें ? बड़ी सेवर होती हैं, दीवार अच्छी नहीं बनेगी। फिर क्या था ! बनारस से चिमनी की ईंटें, जैसे खून से रँगी हों। मोटर तो तब थी नहीं, बड़ी-बड़ी बैलगाड़िया हाँफती-हाँफती आतीं और ईंटें गिरा कर, चली जातीं। लकड़ी के काम का भी कोई ओर नहीं था। बनारस और बरेली के मिस्त्री—आज आलमारी बन रही है तो कल पलंग। क्या नहीं बना और मुंशी जी भी अठारह वर्ष की उम्र में भी जैसे खबर के बबुआ। कहीं तीतर की लड़ाई चल रही है, तो कहीं पतंग कट रही है।

—आज मुंशी जी ने रहीम के मुर्गे पर ऐसी गुलेल चलायी कि बेचारा वहीं का वहीं रह गया। बड़ा पक्का निशाना है भाई ! सारे गाँव में चरचा होने लगती। बूढ़ा नाथू—उसकी बिपत का कोई ठिकाना नहीं था। बचपन से मुंशी की सेवा का नौकर था, पर बड़े होने पर भी मुंशी उसकी गर्दन पर सवार होना नहीं भूलते थे, और "....चल घोड़े....चल....!" फिर ऊपर से अरहर की सिटकुन से सपू.... सपू....पूढ़ा नाथू खीस काढ़ देता।

—वह गरीब ब्राह्मण, बेचारा रसोई बनाता था। एक दिन कुर्ता पहना रहा था। कपड़ा झाड़ना भूल गया और मुंशी को एक बर्रे ने काट लिया। बड़े मुंशी के कोप को कौन कहे ? सारेगाँव में सनसनी फैल गयी। क्या सजा मिलेगी बेचारे को....? अंत में उसे एक बर्रे के छत्ते के नीचे खड़ा कराया गया और ऊपर का छत्ता बड़ी लग्गी से खोद दिया गया। फिर क्या था....? वह बहुत छटपटाया, बहुत चिल्लाया पर भागता कैसे ? हाथ-पैर तो बँधे थे, और सारा गाँव हँस-हँस कर तमाशा देख रहा था।

—और मुंशी की आँखें....? उनके महातिम का क्या कहना, जिस पर पड़ गयीं, वह अपने को धन्य समझती।—सास का मन-एकाएक तिलमिला उठा। उसने हुक्की पर ज़ोर का कश खींचा पर तमाखू तो कभी की जल कर राख हो चुकी थी। उसने हुक्की दीवार से उठगा दी और उठ कर बाहर चली गयी।

अँधेरा हो गया था और मुंशी की अधगिरी बखरी, बड़ी सुनसान और भयानक लग रही थी। कोने से अंदर वाले बारजे का वह हिस्सा दिखाई दे रहा था, जहाँ मुंशी जी अपनी शादी के बाद सोया करते थे। उसी में चिड़ियों ने खोते बना लिये थे। कोई जानवर रहा होगा, चिड़ियाँ एकाएक चूं....चूं....कर उठीं। सास ने उधर दृष्टि डाली और चिड़ियों का भय उसकी नस में उतर गया।

—मुंशी की शादी के बाद, उसे वहाँ नौकरी मिली थी, बीवी की सेवा-टहल भी तो होनी ही थी। नयी, जवान उमर थी तब मेरी—उसने अपने बालों पर हाथ फेरा, वे बड़े रूखे लग रहे थे।

—शराब की बोतलें खुलतीं। हमारे मुलुक में तिरियाँ बोतलें नहीं ढालतीं। हाँ भाई, वैश्या की बात दूसरी है, पर ललाइन क्यों मानतीं और मुंशी जी तो जैसे पागल थे, पागल, और मैं डर-डर कर कलेजी, पकौड़ी, नमकीन पहुँचाती रहती।

—शुरू ही की तो बात है, एक दिन ललाइन पीते-पीते बेहोश हो गयीं, पर मुंशी कब होने के? कोई नयी आदत तो थी, नहीं। लड़खड़ाती ज़बान में कहने लगे, "थोड़ी....क....ले....जी....।" मैं आयी तों उठ कर किवाड़ बंद कर लिया।

—मैं बहुत डर गयी थी। पाँव थर-थर काँप रहे थे, पसीना हो आया था, पर मुंशी नहीं माना, आँखें निकालीं और गरज कर कहने लगा—"एक हरामज़ादी तो सो गयी, दूसरी....दूसरी....डर....रही.... और उसने उँगली से मुझे बैठने का इशारा किया। मैं नहीं बैठी, तो

एकाएक मुझे पकड़ कर खींचा। में चारपाई पर गिर पड़ी, "खोल इसकी धोती....धोती....खोल !"

—मैं डर कर पीछे हट गयी थी और भागना चाहती थी, पर वह दरवाज़े पर खड़ा था। भूत की तरह दौड़ कर उसने अपनी बीवी को नंगा कर दिया और ठहाका मार कर हँसने लगा, "कैसी सुंदर है....कैसी....और तू ! तू ! ! तू भी सुंदर है !" वह दौड़ा मेरी ओर, पर मैं भाग कर कमरे के कोने से जा लगी। "तू भागती है....तू.... ? और उसने वहीं खूटीं पर टँगा हंटर उतार लिया और सट्....सट्....। मैंने हंटर हाथ से पकड़ कर खींच लिया, और ज़ोर से चिल्लायी, पर भूत तब भी नहीं माना और दौड़ कर मुझे अपनी कड़ी बाहों में दबा लिया। छी....इतनी बदबू थी, उसके मुँह में। मैं बेहद चिल्लाने लगी और कस कर, एक घूँसा उसकी नाक पर जमाया। मुंशी बेहोश हो गया, मैंने दरवाज़ा खोला तो घर वाले आ गये थे, बत्ती जल रही थी और ललाइन वैसी की वैसी....लोगों का सिर लाज के मारे झुक गया। फिर जो हुआ....। सास ने माथे पर हाथ रखा, पसीना हो आया था। उसका कलेजा धक्-धक् कर रहा था। तब तक चिड़ियों ने फिर चूँ...चूँ....की और कुत्ते भूँकने लगे। वह लौटी और धूएँ से भरे घर में घुस गयी।

खर्च-बर्च की हालत भी मुंशी की अज़ीब थी। कहते हैं, गाँजे की चिलम कभी ठंडी ही नहीं होती थी। दूर-दूर के गँजेड़ी, हमेशा डटे रहते। तर-त्योहार पर बाप-दादों से लगी हुई परम्परा का निर्वाह होता ही रहता; रुपया चाहे जहाँ से आए। धीरे-धीरे खेत-बारी बिकने लगे पर शान में कोई अंतर न आया। हालत यहाँ तक पहुँच गयी कि जब मुंशी जी के बाप मरे, तो घर में एक कौड़ी नहीं रह गयी थी। बड़े बाप की बात, तेरही तो धूम-धाम से होनी ही चाहिए....मुंशी जी ने अपने चारों ओर

देखा, एक अँधेरा। अब कोई भी उनका साथी नहीं था। महाजन का घर देखा, ज़मींदार से बातें कीं, पर कोई रुपया देने को तैयार न हुआ। अंत में सारी जगह-ज़मीन लिख कर रुपया आया और काम-किरिया बड़ी धूम-धाम से बीती। लड़के-बच्चे भी होने लगे और घर की हवा भी बिगड़ती ही गयी पर उनका शाही दिल छोटा नहीं हुआ।

सरूपिया ब्राह्मणी विधवा थी, उसकी कन्या सयानी हो गयी थी पर उसके पास धान-पान देने को भी पैसा नहीं था। सरूपिया के पति, मुंशी जी के बाप के पुराने नौकरों में से थे। एक दिन मुंशी जी उधर से जा रहे थे, पंडिताइन ने बुलाया और बेटी को उनके आगे बैठा दिया, "देखो मुंशी! अब हम कहाँ जाएँ। लड़की की बात, कोई कब तक घर में बैठाए रहेगा, पर घर में कुछ नहीं है, कैसे शादी हो?" पंडिताइन रोने लगीं। मुंशी जी ने पान की पीक उगलते हुए कहा, "इसमें क्या धरा है चाची! शादी तय करो, सब देखा जाएगा और मुंशी ने अपनी बीबी का सारा जेवर बेच डाला और पंडिताइन के घर बैठ कर शादी-ब्याह का सारा इन्तज़ाम किया। बारात आयी तो बड़ी इज्जत के साथ मिले और कन्यादान किया। सारे गाँव में वाह-वाह मच गयी, पर कोई नहीं जानता था कि मुंशी जी की हालत एकदम खराब हो गयी है।

भीतर-भीतर महाजनों का तकाजा भी होने लगा और धमकी भी। धीरे-धीरे वह दिन आ गया कि लोग मुंशी को देख कर घर में घुसने लगे। "जै राम जी की भइया!" मुंशी जिसके दरवाज़े पर कहते वह मन ही मन, कुढ़ने लगता। "साला सुबह ही आ धमका। कुछ माँगना ही चाहता है।" घर में फ़ाक़े होने लगे। लड़के-बच्चे आवारा घूमने लगे।

बड़ा लड़का मिलिटरी में भरती हो गया। कुछ कमाने-धमाने लगा। मुंशी जी ने सोचा था, शायद अब दिन लौट आवें पर नतीज़ा कुछ भी न हुआ। बहुत दिनों पर लौटा तो सारे गाँव में एक बार फिर

चर्चा उठी।—लड़का कमा कर आया है, और महाजन लोग दौड़ पड़े, पर बीच ही में मुंशी के छोटे लड़के ने उसका मनीबेग उड़ा लिया और झटपट गाँजे की दूकान से एक भर गाँजा ले आया। बहुत दिनों पर, एक बार फिर चिलम गरम हुई, बाप-बेटे ने एक-दूसरे को और देखा और गाँजे के लंबे धुएँ में, दोनों की आँखें तैरने लगीं। एक खस्सी भी आ गया....शाम को वह भी कटा। शराब भी आयी और इसी बीच, बड़े लड़के ने रुपये की खोज की, हल्ला-गुल्ला मचा, खोज-खाज हुई पर कहीं गिरा हो तो न! और छोटा लड़का खोज में सबसे ज़्यादा हिस्सा लेता रहा।

मुंशी जी दुखी नहीं हुए, बल्कि समझाते रहे, "जाने दो, गया सो गया, बेटा!" और छोटे लड़के से चुपके से कहने लगे, "कुछ तो दे ही दो!"

उस दिन रात जब बाप बेटों के साथ खाना खाने बैठा तो उनकी पुरानी हँसी लौट आयी थी। झुर्रीदार चेहरे पर वही पुराना लाली, और आगे के दो टूटे दाँतों के बीच से, जीभ का बाहर आना-जाना चलता रहा।

दूसरे दिन लड़का नाराज़ हो कर जाने लगा तो मुंशी जी ने बड़े आर्त स्वर में कहा, "बेटा! अब तो तुम्हीं लोगों का सहारा है....जाते हो तो जाओ, नौकरी की बात ठहरी, पर कुछ देते-लेते रहना।" लड़का चला गया तो फिर न लौटा। इसी तरह धीरे-धीरे सभी बच्चे मुंशी जी से अलग हो गये।

अब मुंशी जी भी अकेले हो गये हैं। बीवी के साथ बीमार हैं पर कोई बात तक नहीं पूछता....आँखें धँस कर गढ़े में चली गयी हैं और कमर झुक कर धनुष हो गयी है। किसी-किसी तरह लकड़ी के सहारे उठते हैं। इधर कई दिनों के लगातार फ़ाक़े के बाद यह बुखार आया है। कहाँ जाएँ, किससे कहें? रामू धोबी खेत से मकाई काटे जा रहा था,

मुंशी जी ने आवाज़ दी, वह रुक गया। मुंशी जी ने दाँत निपोरते हुए कहा, "दो भुट्टे तो रख दे रामू! इस साल जीभ तरस गयी।"

रामू मन ही मन भुनभुनाया, पर देता कैसे न, और उसने दो कच्ची बालें तोड़ कर बिस्तर पर फेंक दीं। मुंशी जी ने अपनी पत्नी की ओर देखा, वह मुँह ढाँके सो रही थी। सोचने लगे—एक मैं खा लूँ, एक उसके लिए रख दूँ और जल्दी-जल्दी कच्चे भुट्टे को, दाँतों से निखोरने लगे....जब सब दाना खत्म हो गया और ठेंठी दाँत से लड़ने लगी, तो उन्हें दूसरे का ख्याल आया, बगल में देखा, औरत सो रही थी, उन्होंने दूसरा भुट्टा भी उठाया, छीला और चादर के नीचे रख कर जल्दी-जल्दी खाने लगे। भुट्टा ख़त्म हो गया तो चादर हटायी। कुछ दम पेट में आ गया था....ज्ञान क्यों न जगता।

—बेचारी बारह दिन से भूखी प्यासी पड़ी है, और....मैं....मैं! मुंशी जी उठ खड़े हुए। आज ज़रूर कहीं-न-कहीं से अन्न-पानी का प्रबंध करूँगा। अगर पाँच रुपये मिल जाते तो आटा-दाल ले आ कर रख देता। वे उठ खड़े हुए, लकुटिया सँभाली और थोड़ी-थोड़ी दूर पर बैठते-घुसकते, धीरे-धीरे महाजन ठाकुर के दरवाज़े पर पहुँच गये। बहुत से लोग बैठे थे, मुंशी जी भी वहीं जा कर बैठ गये। सुबह के बैठे तो बारह बज गया पर ठाकुर ने पैसा देना नहीं माना....मुंशी जी बहुत रोये-कलपे पर उनका कलेजा नहीं पसीजा।

इसी बीच ठाकुर का छोटा भाई आया और कहने लगा, "बेचारा विपत में है, समझ लेना कि भीख दे दिया। कम से कम दो रुपये तो दे दो!"

मुंशी जी को रुपये मिले तो जैसे उनके पाँवों में ताक़त आ गयी हो—उठे और धीरे-धीरे घर की ओर चलने लगे। उनके मन में मनोरथों की भीड़ लगी हुई थी। कुछ ही दूर आये होंगे कि थकान लगी और पोखरी की नीम की छाँह में बैठ गये। भरों ने पोखरी खरीदी

थी और जाल डाल कर मछली पकड़ रहे थे—बड़े-बड़े सउर, टेंगर तथा सिंघी और माँगुर। मुंशी जी का मन डोल गया। जेब से रुपया निकाला, पर एकाएक पत्नी की याद आ गयी और उसे फिर सँभाल कर रख लिया।

मछुआहे ने नीचे से आवाज़ लगायी, "अरे मुंशी जी! कुछ जूस-पानी नहीं होगा?" मुंशी जी की आँखों में पुराना नशा डोल गया। कहने लगे, "भाई, एक रुपये की दे जाना!" और टन से एक रुपया नीचे फेंक दिया। मछुहा मुंशी जी का पुराना परिचित है, कितनी ही बार दोनों, बोतलों पर साथ-साथ जुट चुके हैं। वह पास आ कर कहने लगा, "बस सूखी ही कटेगी क्या मुंशी! तुम भी मिरचुक हो गये। अरे यार, लाओ न एक रुपया! आज ही रात को उतारी है।"

मुंशी का मुर्दा दिल एक बार जी उठा। मुँह में पानी भर गया। हाथ जेब में गया और दूसरा रुपया भी ज़मीन पर जा गिरा।

सात बच्चों की माँ

एक पहर रात बीती होगी अभी, पर मनेरा के भीटों पर गहरी काली रात हो आयी थी। हाथ को हाथ न सूझता था, बड़े-बड़े पुराने आम के पेड़, जिनकी कुछ दूर तक नंगी डालियाँ, फिर ऊपर को झपसी कउचियों में उल्लू और गेदुरों की कच-पच, दो-एक खजूर और नीम के उदास पेड़ और नाटी-नाटी अड़ूँस की झाड़ियाँ, किनारे-किनारे हाजीबाबा, रहमत, करामत और जुम्मन साईं की कब्रें; बड़ा भयानक लगता है न!

—रात को जो साँय-साँय की आवाज़ आती है : जुम्मन साईं अपनी दाढ़ी सुलझा रहे हैं और हाजी की बीबी ककहा-डोकी बेचती है।

—रह-रह कर कब्रों से आग की लुत्ती निकलती है : जानू साँस लेता है; और कोई आदमी उधर पाँव नहीं रखता। गोरू चौआ छुड़ा ले, तो भी कोई खटिया के नीचे पाँव नहीं रखता। अरे मनोरवा की ओर चला गया है, बस।

"अब तो दिन में भी कोई उधर नहीं जाता बबुआ!" छब्बी भउजी ने मटर की फलियाँ निखोरते हुए कहा और गोद में लेटे बच्चे को तनिक आगे सरका लिया! बच्चा आँचल के नीचे घुटुर-घुटुर माँ का दूध पीने लगा। उन्होंने कहा, "छोड़ भी, कहाँ का दूध कसा है, जो चभर-चभर पीता जा रहा है।"

मुझे हँसी आ गयी, "अभी दूध की कमी पड़ने लगी भउजी! अरे, आगम तो अभी बैठा ही है।"

भउजी मुसकरायीं, मातृत्व-भरे स्नेह की प्याली उनकी चेहरे पर छलक गयी और ममता की अनेक रेखाएँ दुलराने लगीं।

"बड़ा बुरा जमाना लग गया है बबुआ। अब तो सात-सात बच्चों की माँ भी नये मनसेधू के साथ भागने लगीं, इस गाँव से!"

"क्या कह रही हो भउजी?" मैंने विस्मय से कहा।

"सच मानो लाला ! तुम तो बाहर रहते हो न ! जो न हो जाए, वही थोड़ा है।"

उन्होंने बच्चे को सँभाल कर गोद में बैठा लिया और उसके माथे को सहलाने लगीं।

"तीन तो मर गये, पर सन्नो के चार बेटे अभी जिन्दा हैं। पाथर है उसका करेज कि नये भतार के साथ निकल गयी।"

"सन्नो गाँव छोड़ी गयी ?"

"हाँ, वह तो कभी की गाँव छोड़ गयी, और वह देवी पंडित है न, उसे न जाने कहाँ छोड़ कर, दो-तीन दिन से गाँव लौट आया है। बड़ी डरावनी सूरत हो गयी है उसकी, बबुआ। रात-दिन उसी मनेरवा पर रहता है। न खाना-पीना, सूख कर काँटा हो गया है। बाल बढ़ गये हैं। लड़के-बच्चे तो उसे देख कर डर जाएँ। कोई उससे बोलता तक नहीं। देखो, तुम उधर जाना मत !"

भउजी उठ खड़ी हुई। शायद भउरे में गाड़ा आलू जल रहा था और उसकी महक उन्हें मिल गयी थी। इतने में किसी के चिल्लाने की आवाज़ आयी। भउजी ने कहा, "सुनो, देखो यह लीला।"

".....दोहाई गाँव-पुर की। इहै गाँव के सरदार लोग हमके गाँव में नहीं रहे देत हउवें.....

मैं उठ खड़ा हुआ। बाहर पूस का हल्का सफ़ेद कुहरा और उसके पीछे से झाँकते हुए मनेरा के बड़े-बड़े आम के पेड़—बहुत मद्धिम, किन्तु साकार !

देबी चिल्लाता जा रहा था।

इसी समय बग़ल के पेड़ पर बैठी टिटहरी बोल उठी। उसका साथी दूसरे पेड़ पर से पर फड़फड़ा कर उड़ा और कोहरे को चीरता हुआ उसके पास पहुँच गया।

—सन्नो.....सात बच्चों की माँ.....मैं तो उसे सात-आठ बरस से जानता हूँ। डोले में उठ कर आयी थी।। ग़रीब की लड़की थी तो क्या हुआ, दिल तो ग़रीब का नहीं रहा होगा, और यहाँ सारा गाँव

इकट्ठा था। इब्राहिम का बाजा, सोन्हू का सिंहा और चतुरी का डफला क्यों न बजता, पचास वर्ष के लँगड़े सरूप के लिए षोड़शी कन्या जो आ रही थी! यह तो अपने ही गाँव का मान है भाई, कि लँगड़े-लूले भी कुँवारे नहीं रहते। ग़रीब सरूप कहाँ पाता पैसा? दस बिस्से खेत बेच कर दलालों की जेब भरी। सन्नो के बाप का माँगना पूरा किया और एकाएक जब पान-सी पातर और फूल-सी सुकुमार सन्नो ने डोले से पैर बाहर रखा, तो सारा गाँव सिकुड़ कर सन्न रह गया, जैसे सबको पाला मार गया हो या चोर को कहीं से चोरी के पापों का पता चल गया हो।".....कन्या के साथ बड़ा अन्याय हुआ, भाई! थोड़ा उमर-समो का ध्यान तो देना ही चाहिए।" आदि बातें चलने लगीं।

एक दिन शोर मचा कि सन्नो भाग रही है। सारा गाँव उमड़ पड़ा। सरूप के घर की साँकल खोली गयी, पता चला कि उसकी टूटी वाली टाँग चारपाई की पाटी से बाँध कर वह कहीं भाग गयी है। और सरूप गला फाड़-फाड़ के चिल्ला रहा था, "मेरी गठरी डूब गयी, दोहाई गाँव-पूर की, वह भाग गयी।"

मशाल जलाये गये और लोगों ने इधर-उधर ढूँढ़ना शुरू कर दिया, पर गाँव के एक विशेष दल ने बड़े मनोयोग से इस काम में हाथ बटाया, "जी नहीं लग रहा है लड़की का, क्या करे, साला अपंग जो ठहरा!" और पास वाली अरहर में चारों ओर से घेरा पड़ गया। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सन्नो एक अरहर के पेड़ से सटी, फफक-फफक कर रोती-कलपती पकड़ी गयी और घर लायी गयी, रखवाली का प्रबंध हुआ और उसी रात से फिर सरूप घर में नहीं सोया। पर सन्नो के बच्चे होते रहे और सरूप बाप बनता रहा।

दूसरे दिन मैं देबी से मिला, देख कर बड़ा विस्मय हुआ। शरीर सूख कर काँटा हो गया था। आँखें धँस गयी थीं। एक बड़ी उदास हँसी हँस कर कहने लगा, "क्या देखते हो, भइया! बड़ी जुलुम की मेहरारू

न मिल गयी थी, उसने जो किया, वह क्या कोई ब्याहता करेगी ? ससुरी ने तन-मन सब दे दिया।" उसकी आँखें भर आयीं।

"यह सब क्या हो गया, देबी ?" मैंने पूछा।

फिर क्या था, जैसे किसी बँधे पानी की तल में कोई भारी छेद हो गया हो, वह कहने लगा, "एक दिन को बात है, जब मैं उस ओर से जा रहा था, सावन-भादों का महीना, चिरई चुरमुन को खाने के लिए भी अन्न नहीं था। गाँव में बड़ा ठाला था। बड़े-बड़े के घर, बनिया की दूकान से अनाज आता था खाने को। सन्नों ने एकाएक बुलाया, "महराज !" और मैं चला गया। "बड़ी विपत में फँस गयी हूँ, घर में खाने को कुछ नहीं है। एकाध सेर जौ दे देते, तो मैं लौटा देती।" सरूप वहीं चारपाई में मुँह गाड़े पड़ा था और उसके बच्चे इधर-उधर लेटे थे। तब तक एक नन्ही-सी लड़की रोने लगी, 'माई !.... लोती....लोती....मेरा कलेजा काँप गया।"

देबी धीरे-धीरे बोलने लगा...."दिन चढ़ आया था और धूप का हलदिया रंग पास के बबूल की पत्तियों से पुछ चुका था और एक गहरी हरियाली निकल आयी थी जो किरणों को चमक से कुछ और निखर गयी थी।"

मैंने कहा, "तब.....,"

"जब मैं वहाँ से निकला, तो मुझे बड़ी शरम लगी।" देबी कहने लगा, "क्योंकि वह जगह गाँव में बहुत बदनाम थी, पर बच्चा ! मेरे मन की दया ने मुझे साहस भी दिया।"

मैंने देखा, देबी की आँखों में विगत उत्साह की गर्मी रेंग आयी और उसकी आँखों के डोरे और लाल हो उठे। लेकिन वह उसी प्रवाह में कहता जा रहा था—

"मैंने उसे दाल, चावल और आटा पहुँचाया। अब मैं उधर अनायास जाता और उसके यहाँ रुक जाता। वह बुलाती, बैठाती, पानी देती और देर तक बातें करती।

"एक दिन बहुत रात तक बात करती रही। फिर जब मैं चलने लगा,

तो कहने लगी, 'बैठो न !' मेरा जी अच्छा नहीं था, सिर में दर्द था।

"उसने कहा, 'लेट जाओ, सिर में तेल लगा दूँ।' और उस रात जो हुआ, सो मुझ अविवाहित आदमी के लिए कहने लायक सुख नहीं था। सुबह जब मुर्गे बोले तो मैं चलने लगा; पर उसने मेरे पैरों पर माथा टेक दिया और देर तक रोती रही।

"कहने लगी 'तुम मुझे कुछ न देना, पर आना ज़रूर, नहीं तो मैं मर जाऊँगी !'

"मैंने कहा, 'यह लड़के बच्चे....' तो एक दुख उसके सीने में भर गया, 'पंडित, इनका बोझ ढोते-ढोते मैं थक गयी हूँ। मैंने देख लिया है, ओफ़....' और वह बेतरह रोने लगी।

"मेरा मन एक नशे से भर गया।" देबी ने कहा और थोड़ी देर तक चुपचाप नीचे देखता रहा।

फिर कहने लगा, "एक दिन मैंने उसे बुरी तरह पीटा और डाँटते हुए कहने लगा, 'हरामज़ादी, इस गाँव में किसी को तो नहीं छोड़ा' झूठ-मूठ नखरा क्यों करती है ?' वह बहुत रोयी—कलप-कलप कर, और कहने लगी, 'मुझे मार डालो, मुझे काट डालो, यही तो मैं चाहती हूँ....मुझे खूब ताना मारो, जिसमें मेरा कलेजा फट जाए। अब मैं जीना नहीं चाहती पंडित, मैं यही तो चाहती थी कि कोई मुझसे पूछे, मुझे डाँटे, मुझे मारे, मुझे रास्ते पर लाए। मैं तो केवल मशीन थी, भूख और अँधेरे में राक्षस मुझे खाते रहे।"

देबी का चेहरा पीला पड़ गया था। दुख की कातरता उभर आयी थी, पर फिर डूब गयी, जैसे किसी अथाह तल में। भींट के नीचे एक चरवाहा गाने लगा था। "मन न रँगायो, रँगायो जोगी कपड़ा।" और बग़ल वाली बसवट में श्यामा का स्वर मद्धिम पड़ गया था। सूरज की पतली नुकीली किरणें बाँस की लम्बी, पतली पत्तियों में फँस गयी थीं।

मैंने कहा, "हाँ....तो...."

"कुछ दिन के बाद मैंने वहाँ जाना बंद कर दिया, पर वह

मानी नहीं । रोज मेरे घर आती, रात-भर रहती और सुबह चली जाती । एक दिन उसने जाने से इनकार कर दिया । मैंने बहुत कहा, जबरदस्ती बाहर करना चाहा, पर किसी तरह नहीं मानी । अंत में परेशान हो कर मैंने एक गड़ाँसे से, जो वहीं पड़ा था, उस पर वार कर दिया । चमड़ा ही कट कर रह गया, संयोग अच्छा था ।" देवी ने कहा, फिर कुछ देर तक रुक कर इधर-उधर देखने लगा ।

मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"फिर क्या होता....सारा गाँव जुटा, खास कर वे लोग, जो उसके साथी रह चुके थे । घर खोला गया और पंचों ने पंचायत फान दी, 'इसे पुलिस को देना चाहिए । इसे गाँव से निकाल देना चाहिए ।' न जाने क्या-क्या बातें होने लगीं । लोगों ने सन्नो को देखा, वह करीब-करीब बेहोश थी । मेरे सिर का भूत भी उतर चुका था और आशंका से मैं भी काँप रहा था । लोगों ने लकड़ी से उसे खोदा, जैसे कोई जानवर को खोदता है, बच्चा ! और पूछने लगे कि किसने मारा ..... पर उसने जो उत्तर दिया, उससे लोगों का दाँव नहीं लगा । उसने कहा—मैंने अपने से गँड़ासा मारा है ।

"असल बात तो यह थी कि वह अब मुझसे दूर नहीं रहना चाहती थी । इधर पंचों ने भी गाँव से निकालने का फैसला कर दिया और हम लोग गाँव से बाहर चले गये ।"

देवी की आँखों के आगे अँधेरा छा गया । वह चुप हो गया और जल्दी-जल्दी अपनी दाढ़ी में हाथ चलाने लगा ।

"फिर तुम उसे क्यों छोड़ आये ?" मैंने बड़ी आत्मीयता से पूछा ।

"क्या कहूँ, भैया ! कुछ कहा नहीं जाता । कौन जानें मैंने ही गलती की हो ! बात यह हुई...." उसने साहस बटोरते हुए कहना शुरू किया—

"बनारस चले जाने के बाद मैंने उसके लिए सब कुछ किया । ईंटें ढोयीं, पानी पिलाता रहा, मूँगफली बेचता रहा, काटन मिल में रुई भी ढोयी, और उसने भी कुछ नहीं उठा रखा ।

"तन उसने दिया था सो दिया ही था, मन से भी उसने कुछ भी नहीं बचाया। पर मुझे उसके ऊपर लगातार शक बना रहता था। वह किसी से बोली नहीं कि मैं समझता था बदमाश तो है ही कौन जाने इसका, और उसे खूब पीटता, खूब पीटता; यहाँ तक कि मारते-मारते बेहोश कर देता पर वह कुछ न बोलती और टाँगें घसीट-घसीट कर खाना बनाती, खिलाती और देर तक मेरा पैर दबाती रहती। कभी-कभी तो गुस्से में कह जाता, 'जब तुम अपने तन से जन्मे बच्चों की नहीं हुई, तो हमारी क्या होगी!' पर वह चुप तो चुप, जैसे काठ मार गया हो।" देबी एकाएक चुप हो गया फिर धीरे-धीरे कहने लगा, जैसे राह चलते एकाएक किसी राही को काँटा चुभ गया हो—

"एक दिन ऐसा हुआ कि मिल से मुझे चार बजे दिन में ही छुट्टी मिल गयी। मैं आया, तो देखता हूँ कि वह एक राही को पानी पिलाती हुई मुसकरा कर बातें कर रही है। गुस्से का ठिकाना नहीं रहा मैंने उसी जगह धूप में सूखते चैले से उसे इतना मारा कि वह बेहोश हो गयी और उसे वहीं छोड़ कर यहाँ भाग आया।"

"तुमने अच्छा नहीं किया देबी।" मैंने दुखी हो कर कहा और उठ कर चलने के लिए तैयार हो गया। दिन बहुत चढ़ आया था और सर्दी भी कुछ कम हो गयी थी। वह भी उठ खड़ा हुआ। मैंने देखा, उसका शरीर कुछ कड़ा हो गया था, फिर भी वह काँपता जा रहा था।

मैंने कहा, "तो यहाँ क्यों पड़े रहते हो?"

"गाँव वाले रहने नहीं देते। कहते हैं....कहते हैं...." उसका गला भर आया। फिर वह बोल नहीं सका।

"और यदि वह मर गयी हो तो...." मेरे मुँह से सहसा निकल गया, तो देबी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उसने दोनों हाथों से माथा थाम लिया और पागलों की तरह गर्दन इधर-उधर हिलाने लगा।

मैं वहाँ से चला, तो रास्ते भर हीर राँझा, लैला-मजनूँ और शीरी-फरहाद का चित्र बनता-बिगड़ता रहा। पर सन्नो जैसे किसी संगमरमर की मूर्ति-सी आ कर मेरी आँखों में टिक जाती और वे सारे

चित्र धुल जाते। मैं गाँव आ कर, छब्बी भउजी के घर में घुस गया और देर तक आँखें ढाँपे, उनकी गोद में सिर गाड़े पड़ा रहा, उन्होंने बार-बार पूछा, पर मैं कुछ बोल नहीं सका और खामोश पड़ा रहा।

दूसरे दिन बड़े सबेरे मैं लिहाफ़ में मुँह गाड़े पड़ा था कि भउजी ने जगाया, "अरे बबुआ! उठो देखो, तुम्हारी सन्नो आ गयी।"

मैं हड़बड़ा कर उठा तो अभी कुहरे की भूरी चाँदनी सुनहरी भी नहीं हुई थी और लड़के-बच्चे आग के आगे वैसे ही सिसिया रहे थे। बाहर ओस की चिपचिपाहट जैसी की तैसी थी। मैं जल्दी-जल्दी सन्नो के घर की ओर दौड़ पड़ा।

सारा गाँव अमोलिया वाले कुएँ के चारों ओर जुटा था। कुएँ में रस्सियाँ पड़ गयी थीं और लोग चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे, "हरामजादी निकल आ, क्यों गाँव को झंझट में फँसाती है। मरना था तो जहाँ भतार किया था, वहीं क्यों नहीं मर गयी।" पर वह बाहर आने को तैयार नहीं होती थी। उसका दुबला-पतला शरीर शीत से सिकुड़ कर गठरी हो गया था। फटी-पुरानी धोती का सूत सूत उसके शरीर से सट गया था। सन्ना के दो बड़े लड़के लाठियाँ ले कर लाख-लाख गालियाँ बक रहे थे, "हरामजादी निकली नहीं कि सिर तोड़देंगे।"

बाहर कुएँ के पास एक छोटी-सी हाँड़ी पड़ी थी। उसमें मिठाइयाँ थीं। लोग कह रहे थे, "सरूपवा के लिए लायी है, सरूपवा के लिए!" पर सन्नो टस से मस नहीं हुई और रस्सी पकड़े हुए खड़ी रही।

इसी बीच लोगों ने देखा सरूप जमीन पर दो हाथ और एक पैर को घसीटता चला आ रहा है। बोलियाँ शुरू हो गयीं। लोगों ने गालियों की बौछार की, पर वह हाँफता हुआ आगे बढ़ता-बढ़ता कुएँ के पास पहुँच गया। उसने मिठाइयाँ देखीं, तो उसकी आँखों से पानी बहने लगा। फिर झुक कर देखा—

"चली आओ मुन्नू की माँ। दो रोटियाँ तो बना कर दोगी।" और फिर वह बोल नहीं सका। उसकी आँखों से आँसू बह कर कुएँ में गिरने लगे।

मैं देख नहीं सका, तो चला आया।

कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए

चाची को मेरी कहानी के स्त्री पात्र पसंद नहीं हैं। उनका कहना है, कि कहानियों में जिन स्त्री पात्रों को मैं चित्रित करता हूँ वे उच्छृंखल, सीनाज़ोर और मुँह-फट होती हैं। वह प्रेम ही नहीं करतीं, जबर्दस्ती अपने को प्रेम करवा लेती हैं। उनमें सामाजिक बंधनों के प्रति आस्था नहीं होती। वह अपने प्रणयी के लिए दुनियाँ तक को छोड़ने के लिए तैयार हो जाती हैं। वे कोमल कम लगती हैं। उनके प्रेम में मौन का स्थान नहीं होता। वे मुहब्बत का इज़हार करती फिरती हैं।

बाह्य चित्रण पर भी उनको आपत्ति है। उनकी नज़रों में वह सब की सब बहुत तगड़ी, स्वस्थ और नौजवान होती हैं। उनका उभरा हुआ वक्ष, उनकी नशीली आँखें, उनके अटपटे, उलझे, लम्बे बाल, उनके होठों की लाली और कपड़ों का बेढंगा जिक्र भी उन्हें अच्छा नहीं लगता।

हमारे प्रोफ़ेसर महोदय भी नाराज हैं। यद्यपि उनका कुल साहित्य-ज्ञान रीति-साहित्य के घरौंदे की तरह का है। उन्हें नौजवान लड़कियों से पर्याप्त स्नेह है। वे स्त्री-शिक्षा, स्वतंत्रता, सौन्दर्य-वर्णन और प्रेम-विरह-चित्रण के ही पोषक हैं। वे कक्षा में बेतरह मुसकराते हैं और कोशिश भी करते हैं, कि कम-से-कम कक्षा का स्त्री वर्ग तो उन्हें पसंद करे ही। वह भावुक बहुत हैं, पर उनका कहना है, कि तुम्हारी कहानियों के स्त्री पात्रों में स्त्रैणता कम और पुरुषत्व अधिक है। वे आसक्ति को अनुराग से अधिक महत्त्व देती हैं। उनमें वासना अधिक है, रागात्मक चिन्तन कम। इसीलिए वे उतावली करती हैं, तपतीं नहीं।

मेरी एक स्त्री मित्र की बातें भी आलोचना से भरी हैं। पहले

जब वे पढ़ती थीं तो वामपक्षीय राजनैतिक दलों की सहयोगिनी थीं। उनकी एक बात मुझे अभी तक नहीं भूली है। कहा करती थीं, "स्त्री-पुरुष में। यदि सांस्कारिक विचारों को छोड़ दिया जाए तो कुछ भी भेद नहीं है। यह सारे नियम, बंधन पुरुष के अपने गढ़े हुए हैं। साथ ही, यदि स्त्री भी वास्तविक समानता का दावा करती है तो उसे मानसिक स्वतंत्रता, पहले अर्जित करनी होगी। पर उन्होंने आजकल एक सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस से विवाह कर लिया है। कहते हैं, पति बड़ा दबंग आफ़िसर है और पत्नी सफल सहचरी। उनका कहना यों है—

"देखो, कहानियों में जब प्यार, मुहब्बत के ही जिक्र करना है तो उसके लिए एक विशेष वतावरण की ज़रूरत होती है। पार्श्व में सुकोमल टहनियों पर झूलते हुए नवविकसित फूल, तितलियाँ, मंद, किन्तु गुदगुदाती हुई वायु, प्रेम-संगीत में विभोर झरने, नीला आकाश, धरती और न जाने क्या-क्या। और यदि तुम्हें भूख, प्यास, तड़पन, विद्रोह और लाचारी लिखनी हो तो फिर अनुरागमय जीवन की, और वातावरण की क्या ज़रूरत। लिखो न मशीन की तरह। क्योंकि जहाँ रोमांस है, स्नेह है, फिर वहाँ अर्थ की भौतिक परम्परा को ले जाना विचारों भावनाओं की परिपक्वता में खलल डालता है। पाठक, जो, एक पारलौकिक रस-चिन्तन में उन्मुक्त रहता है, एकाएक धरती की तकलीफ़ों से तिलमिला उठता है। तुम्हारी कहानी कोई विद्रोह के लिए थोड़े ही पढ़ता है। क्षण-भर को अपने को भूल जाना ही कहानी का मर्म है।"

मेरी आत्म-कहानी की स्त्री पात्र को तो शायद मेरी कहानियों के स्त्री पात्रों पर हमेशा खीज बनी रहती है। जब कभी भूख और वेदना से पीड़ित पागल माँ बाज़ार में अपने बच्चों को बेचती नज़र आती है तो वह पुस्तक ही पटक देती हैं। यदि किसी की स्त्री, जो पति के बुरे आचरण से परेशान हो गयी है, जो रात को शराब के नशे में उसकी सूखी हड्डियों पर डंडे बरसाता है और जब वह उसे छोड़ कर

किसी मनोनुकूल पति की खोज कर लेती है तो हमारी पत्नी को बड़ा बुरा लगता है।

जब कभी कोई स्त्री अपने जनसेवी नायक के गले से लिपट कर कहती है, "मैं तुम्हारे साथ अपने को धधकती हुई आग में भी झोंक सकती हूँ। मैं तुम्हारे साथ समुद्र फाँद जाऊँगी, लड़ूँगी, विद्रोह करूँगी, इस समाज को बदलूँगी।" तो उसका जी तिलमिला उठता है।

इधर एक मित्र ने एक नयी समस्या खड़ी कर दी है। महामुनि भर्तृहरि के शृंगार शतक और फ्रायड के सिद्धान्तों की बात तो है ही, पर समाज के सामान्य जीव उनकी बहुत सी बातों का प्रयोग अच्छा नहीं समझेंगे। जानने की बातें हैं, कि स्त्री तथा पुरुष ही जीवन तथा संसार का निर्माण करते हैं। स्नेह, वात्सल्य और ममता दोनों के सहयोग से ही पैदा होता है। पर क्या स्त्री गाय है, जो हमेशा हरी दूब चाहती है, या पुरुष और स्त्री का मिलन यदि एकान्त में हो, तो वे वासनात्मक क्रिया कलाप से बाज़ नहीं आ सकते, या काम ही जीवन का उत्प्रेरक है?

पर मित्र ने तो मेरी सारी कहानियों को, या यों समझिए की अब तक के सारे साहित्य को खोखला ठहरा दिया है। उन्होंने कहा है कि "तुम्हारी कहानियों की स्त्रियाँ एक ही आदमी के पीछे क्यों पड़ती हैं, क्या उन्हें दूसरे पुरुष नहीं मिलते? फिर तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठवें....। उनका दावा है कि राग का क्षेत्र सीमित नहीं है। हाँ, वे भी हमारे प्रोफ़ेसर साहब की तरह आसक्ति को घृणित और असांस्कृतिक बताते हैं। उनका कहना है कि "इसीलिए तो हमारे पूर्व-पुरुषों ने कहा है, कि राग अपरिमेय, असीमित है। आसक्ति तो एक ही तक बँधती है। उनका अपना निजी विचार है कि पुरुष-स्त्री का रागात्मक संबंध कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में संभव है, चाहे वह कोई भी स्त्री हो, चाहे वह कोई भी पुरुष। उनका स्वयं का संबंध न जाने कितनी लड़कियों से है। वे दावे के साथ कहते हैं, कि हर लड़की की यही दशा

होती है। चाहे वह सामाजिक बंधनों के डर से भले ही कहे कि मैं एक से प्रेम करती हूँ, एक की हूँ, विवाहित हूँ।

उनकी नाराज़गी का सबसे बड़ा कारण यह है कि मैं अपने को सामाजिक उत्थान और प्रगति का लेखक समझता हूँ, फिर क्यों नहीं इन अत्यन्त यथार्थ, सामाजिक प्रक्रियाओं का उल्लेख, अपनी किसी नारी पात्र द्वारा कराता।

मैं परेशान हो गया हूँ, सोचता हूँ, अब यही करूँ। जहाँ जाऊँ, जिससे मिलूँ, हमेशा कहूँ, "मुझे कहानी के लिए नारी पात्र की ज़रूरत है।" अखबारों में विज्ञापन निकलवा दूँ, रेडियो से ब्राडकास्ट करवा दूँ, नेताओं के पास खत लिख दूँ, मित्रों से राय ले लूँ, नोटिसें छपवा डालूँ, पोस्टरें बनवा डालूँ और भी, जो हो सके करूँ कि मुझे सही नारी पात्र मिल जाए, जिसे सब लोग पसंद करें।

संपादक एक बार पढ़ कर लहालोट हो जाएँ। चाची, प्रोफ़ेसर, स्त्री मित्र, दोस्त और पत्नी को तारीफ़ों के पुल बाँधने पड़ें अब मैं ऐसे ही स्त्री-चरित्रों का निर्माण करूँगा जो एक होते हुए भी सार्वभौम हों। उसे जो पढ़े, उसे वही रस मिले। उसमें करुणा, कमज़ोरियाँ, सौंदर्य और स्त्रीत्व तो मैं भर ही दूँगा। क्या कमी है, किसी फूल से कहूँगा, अपना रंग दे दो! लजवंती से कहूँगा, तुम अपना गुण दे दो! किसी लता से कहूँगा, तुम अपनी कमनीयता दे दो! और यदि इतने से काम नहीं चलेगा तो नायिका-भेद उठा कर नारी के समस्त गुणों को, उसमें अन्तर्भूत कर दूँगा। उसकी कमर, उसके उरोज, उसकी आँखें, उसके बाल, उसके पाँव और उसका चेहरा भी, कहीं से चुरा लूँगा और वातावरण के लिए कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल तो है ही। यदि इतने पर भी कमी पड़ी तो, किसी अमेरिकन मैगज़ीन से ट्वाइलेट्स और फैशनेबिल कपड़ों इत्यादि का विज्ञापन देख कर उसे अत्याधुनिक बना दूँगा। हाँ, ऊँचे दर्जे की शिक्षा की बात भी तो उठेगी,

इसलिए थोड़े दिनों यूनिवर्सिटी की लड़कियों के होस्टल की खाक छानूँगा। मुझे पूरा विश्वास है, कि इतना करने के बाद, मैं सफल हो जाऊँगा।

लेकिन इतना सोचने के बाद भी मेरे मन में यह बात जैसी की तैसी बनी हुई है, कि मैंने ऐसे चरित्र क्यों बनाये। क्यों स्त्रियों को इस ढंग से चित्रित किया। क्या मेरा भेजा तो नहीं फिर गया था, जो साहित्य के माध्यम से मैंने इतने बड़े अन्याय किये और यदि सचमुच मैंने ग़लतियाँ की हैं, तो फैसले के लिए मुझे अपनी कहानियों की ही सहायता लेनी पड़ेगी, जिनमें मैंने ऐसे चरित्र निर्मित किये हैं।

सबसे पहले हम संध्या को ही लें। कितनी मासूम लड़की थी बेचारी। जब चाची पहली बार अपने मायके से लौटीं, तो उसे ले कर शहर आयीं। वह देहात की लड़की थी, पढ़ी-लिखी नहीं थी। चाची ने कहा हम इसे पढ़ाने ले आये हैं। धीरे-धीरे चाची ने उसे कपड़े बनवाये। उसके रहने और पढ़ने का प्रबंध किया। उसे शहर के काम अच्छे लगते थे। बरतन नहीं माँजना पड़ता था। आटा नहीं पीसना पड़ता था; इसलिए लगता था, जैसे यहाँ कोई काम ही नहीं है। वह उछल-उछल कर घर का सारा काम कर डालती। पानी देना, चाय बनाना, तरकारी काट डालना, खाना बना लेना, उसे बड़ा अच्छा लगता था। चाचो आराम से बैठी बातें किया करती थीं। कभी मुहल्ले की स्त्रियाँ भी घर में जम जाती थीं, और चाचो उन सब में, सरपंच बन कर टाँग पसार कर बैठ जाती थीं। रात को कभी कमर में दर्द, कभी सिर में दर्द। फिर संध्या तो थी ही, काम करने के लिए।

संध्या की उम्र हो चुकी थी। खाने-पीने की सुविधा थी। थोड़े ही दिनों में उसके हाथ-पाँव चिकने हो गये। शरीर में निखार आ गया। आँखों में एक रोशनी चमकने लगी। कपड़े-लत्ते ठीक से पहिनने और अपने को सजा कर रखने की भी, उसे फिक्र होने लगी। देर तक शीशे के सामने खड़ी रहने में उसे आनंद का अनुभव होने लगा। कभी-कभी

वह स्कूल से लौट कर बगल वाली विजातीय सखी के घर ज़्यादा देर तक रुक जाया करती थी। चाची ने कई बार उसे डाँट बतायी, पर वह बार-बार भूल जाया करती थी; क्योंकि उसकी सहेली का रिसर्च स्कालर, बड़ा भाई, गाने का बड़ा शौकीन था। वह प्रायः शाम को अपनी छोटी बहिन को गाना सिखाया करता था। संध्या को उसका स्वर, उसका स्वभाव, उसके शरीर की सुंदर गठन और बनावट, बड़ी लुभावनी लगती थी। वह अपनी सहेली के पास बैठी-बैठी घर की सुधि ही भूल जाती। एक दिन उसने कहा, "तुम भी गाना सीख लो!"

तब से संध्या उसके बड़े क़रीब हो गयी। दोनों प्रायः मिलते, बातें करते और देर-देर तक मनोविनोद किया करते। जब यह सब चाची को ज्ञात हुआ, तो उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने सयानी लड़की पर हाथ छोड़ दिया। संध्या बहुत रोयी और कई दिनों तक बिना खाना खाये पड़ी रही। चाची ने तय किया कि इसे हम गाँव भेज देंगे, पर संध्या जाने को तैयार न हुई। जब उसके प्रेमी को मालूम हुआ, उसने किसी तरह संध्या को अपने घर बुलाया, बातें कीं, और शादी कर ली। अब लड़का प्रोफ़ेसर हो गया है, और संध्या रिसर्च कर रही है। दोनों अत्यंत स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। साथ-साथ घूमते हैं, खाते-पीते हैं।

चाची को यह नारी पात्र पसंद नहीं हैं। वह चाहती थीं, संध्या में लिहाज होता, वह घर के कामों में अपने को खपाये रहती। मनमाना प्रेम न करती और जब कुछ दिनों के बाद चाची एक अनजान पति कहीं से ढूँढ़ निकालतीं तो वह उसके साथ गृहस्थी जोड़ने में लग जाती। स्त्री को विद्रोह करने की क्या ज़रूरत, माँ बाप तो हैं ही।

चाची संध्या से नाराज़ हैं। संध्या उच्छृंखल है, संध्या उद्दंड है, पर संध्या जो है, वह है। मैं चाची के अनुसार उसे समझा भी नहीं पा रहा हूँ और वह कह रही हैं, "तेरी कलम जुग-जुग जिये लेखक!

तुमने नारी को जीवन और जागरण के प्रति सजग किया है।"

अब रही रमोला, जिसे आप सभी जानते हैं कि वह प्रोफ़सर की शिष्या थी। उसकी बाहरी शकल-सूरत साफ़ बताती थी, कि वह बड़े घर की है। इसीलिए मैंने उसे कहानी में साधारण कपड़े पहनने वालों और साधारण ढंग से रहने वालों से, भीतरी घृणा करते, चित्रित किया। वह चाहती भी यही थी। लेकिन उसे जब पहले दिन प्रोफेसर ने अपने लेक्चर के दर्मियान कई बार देखा, तो उसे लगा जैसे वह उसकी ओर खिंच रहा है। उसने अपनी साड़ी का आँचल ठीक कर लिया। नीचे दृष्टि डाली, ब्लाउज़ देखा, और दोनों छातियों पर लटकती हुई वेणियों के फीते पर नज़र डाली—जो उसकी साँस के उतार-चढ़ाव के साथ बार-बार हिलते वक्ष के साथ, उठ-गिर रहे थे। वे उसे बहुत सुंदर लगे। सचमुच वह बहुत मासूम थी, पर उसने एक दिन प्रोफेसर की हत्या कर दी। "आखिर ऐसा क्यों किया तुमने रमोला!" मैं जब-जब पूछता हूँ, वह यही कहती है, कि उस नीच प्रोफेसर ने मुझे अनेकों प्रलोभन दिये। मुझे पुत्री तक माना, मेरा आदर किया, मुझे सम्मान दिया और अंत में एक दिन अपने घर, रीतिकालीन शृंगारिक सूक्तियों का अर्थ समझाते-समझाते मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे खींच कर, अपने पास कर लिया। मैं समझती थी, वह बुरा नहीं हो सकता, जो आदमी अपने बाह्य जीवन में इतना सात्विक होने का दावा करता है, वह इतना नीच नहीं हो सकता। क्योंकि प्रोफेसर विवाहित था, लेकिन उसका यह व्यापार बढ़ता गया। उसने धीरे-धीरे मेरे स्त्री-मन को अपनी प्रेम और स्नेह से छलछलाती हुई मीठी-मीठी बातों से जकड़ लिया। वह कहता था, "रमोला! तुम तो मेरी प्राण हो, डियर। तुम्हारे बग़ैर मेरा अपना अस्तित्व ही नहीं है।"

"मैं उसके साथ घूमने जाती और देर तक लौटती। फिर रात तक, उसकी प्रेममय वाणी में ऊहापोह हो कर, उसके बाजुओं में खेलती रहती। उसने कहा था, 'मैं तुमसे विवाह कर लूँगा।' अंत में एक दिन,

जब उसने एक होटल में मुझसे शराब पीने का प्रस्ताव किया, तो मेरा मन उनकी ओर से खिंचा। मुझे शक हुआ। मैं क्या समझती थी, कि यह नर-भेष में राक्षस है, लेकिन उसने टाल दिया और गंभीर हो गया। दूसरे दिन, इच्छा न होने पर भी, वह मुझे अपनी कार में टहलाने ले गया। मुझे पता नहीं था, वह कहाँ जा रहा है, पर वह चलता गया। अंत में नगर के एक छोर पर, वह यह कह कर उतरा, कि यह मेरे मित्र का बँगला है। मैं उसके साथ गयी तो शाम बीत चुकी थी। वह मेरे साथ सीधे अंदर घुसता चला गया। ड्राइंग-रूम में मैं रुक रही थी पर उसने कहा, 'कोई बात नहीं चली आओ!' मैंने पूछा, 'कोई स्त्री इस घर में नहीं है क्या?' वह हँसा, 'तुम तो हई हो।'

मेरा मन घृणा से भर गया। मैं एक निश्चित अनिष्ट की भावना से भर गयी। फिर वह एक कमरे में मुझे बैठने को कह कर, अंदर गया। थोड़ी ही देर में एक चौड़े मुँह और छँटी मूँछों वाला आदमी कमरे में आया। उसके आते ही, कमरा एक अजीब सी बदबू से, जिसमें शराब की घुटन थी, भर गया। मैं घबरायी, तब तक एक नौकर बोतल और गिलास ले कर घुसा। मैं उठना चाहती थी, पर उस आदमी ने नौकर को बाहर जाने के लिए कहते हुए, मेरे कंधे पर हाथ रख दिया और बलपूर्वक मुझे अपनी तरफ़ खींच कर, अपने कड़े किंतु बलशाली सीने में भींच लिया। मैंने घबरा कर, उसे दाँतों से काट लिया। वह छोड़ कर अलग हो गया, और जब मैं बाहर भागने को हुई तो उसने दौड़ कर पकड़ना चाहा, पर कुर्सी से लड़ कर गिर पड़ा। मैं बाहर गयी, तो प्रोफ़ेसर भी गिलासें ढाले जा रहा था। उसने मुसकराते हुए टूटी ज़बान में कहा, 'आओ....रमोला....डियर!'

"मैंने कहा...., 'जी' आती हूँ!" और वहीं कोने में पड़े हुए लोहे के राड को उठा कर, अपनी पूरी शक्ति से उसके सिर पर जड़ दिया, वह चिल्लाया, फिर ख़ामोश हो गया। मुझे जेल में पता लगा, कि वह

मर गया, तो मैं जी भर कर हँसी और हँसती रही।"

प्रोफ़ेसर के कथनानुसार, मैंने अपने इस चरित्र से न जाने कितनी बार बातें कीं। उसे ऊँच-नीच समझाया। जेल की तकलीफ़ों से डराया और विकृत मनुष्यों के जाल में पड़ कर, भेड़ बन जाने की सलाह दी पर रमोला नहीं मानती। वह कहती है, "नहीं, तुमने ठीक किया है। मैं जेल जाऊँगी। मैं लड़ूँगी, मैं खून करूँगी। क्या मैं मोम की पुतली हूँ, कि जो जैसे चाहे, मुझे इस्तेमाल करे। तुमने ठीक किया है, लेखक!"

अब मैं लक्ष्मी से पूछता हूँ, जिस पर मेरी स्त्री मित्र को बड़ा एतराज़ है। लक्ष्मी भी बड़े घर की लड़की है। उसे एक ग़रीब किन्तु प्रतिभाशाली लड़के से मुहब्बत हो जाती है। लेकिन समय की गति और उम्र के बढ़ाव के साथ-साथ पढ़ी-लिखी लड़कियों का यह कहना कि "पति तो सभी को मिल जाते हैं, पर धन, वैभव, ड्राइंग-रूम और मोटर का क्या होगा?" लक्ष्मी को मैंने इन आर्थिक प्रलोभनों में इतना उलझा दिया, कि वह हमेशा प्रणय को धन की दृष्टि से देखने लगी। बाद में जब उसके माता-पिता ने मग्गामल के सुपुत्र जानकीनाथ से उसका विवाह तय कर दिया तो वह मन ही मन बड़ी खुश हुई। पर जब वह ससुराल पहुँची और अपार धनराशि के बीच भी उसका जीवन, बड़े-बड़े तीखे अमानुषी काँटों के बीच छिदने लगा तो वह पागल की भाँति अपने उस ग़रीब प्रेमी की याद करके रोया करती। उसका पति अत्यधिक खामोश, भोंड़ा और कुंद दिमाग़ का है। वह रात-दिन सट्टेबाज़ी और कोठे-शराब से नीचे की बात ही नहीं करता। उसे रेस का भी शौक़ है। वह लक्ष्मी में विशेष रुचि नहीं रखता, क्योंकि वह तो घर की दीवारों में रहने वाली लक्ष्मी है।

संयोगवश वह ग़रीब लड़का उसकी ही मिल में नौकर हो गया। और एक दिन कुछ व्यक्तिगत विचार विनिमय के लिए घर पर

आया। ऐसी अवस्था में लक्ष्मी अपने को रोक न सकी। उससे मिली, बातें कीं, और उन दोनों के रिश्ते फिर से जुड़ने लगे। सेठ ने जब इन बातों को जान लिया तो एक जाल का मुक़दमा चला कर, उस लड़के को जेल में बंद करा दिया। लक्ष्मी ने घर से निकल कर अपने क़ीमती जेवरों को बेच डाला और उसकी ज़मानत की। फिर सेठ को डाइवोर्स कर, उससे शादी कर ली।

लक्ष्मी को कुछ भी समझाना मेरी ताक़त के बाहर है, क्योंकि जब से वह मेरी कहानी में पात्र की हैसियत से आयी, तभी से वह अपनी राय और विचार-धारा के आगे दुनियाँ को झूठा समझती है। वह मुझसे गुस्से में कहती है, "लिखो! लिखो!! नहीं तो तुम्हारी कलम तोड़ कर फेंक दूँगी। तुम्हारा लिखना हमेशा-हमेशा के लिए बंद कर दूँगी।" और जब मैं कहता हूँ, कि "लक्ष्मी! लोग मुझ पर नाराज़ होते हैं!" तो वह कहती है, "जानते नहीं, यह हारे हुए लोगों की कराह है, जो जीवन के आगे घुटने टेक चुके हैं। उन्हें भी कभी जीवन प्रिय था। उन्हें भी कभी परम्पराओं से विरोध था पर जब समय की कसौटी पर, इनसे बलिदान और उत्सर्ग की माँग की गयी, तो उन्होंने आँखें चुरा लीं। आराम ने इन्हें खींच लिया, और जीवन ने इन्हें पलायन दे डाला। मैं तो ऐसी ही रहूँगी, यदि तुमने एक अक्षर भी काटा तो ठीक नहीं होगा।" ऐसी अवस्था में मुझे कोई उपाय नहीं सूझता।

अपने मित्र को मैं कैसे खुश करूँ। उन्हें पठान कमील खाँ की भानजी, रसीदा बेगम के चरित्र में अस्वाभाविकता मिलती है। और यह रसीदा भी अजीब खामोश लड़की है। पठान चाहता है कि उसका एकमात्र बेटा उससे शादी कर ले, पर रशीदा इस प्रस्ताव को जानते हुए भी, पठान के लड़के से कभी भी मुहब्बत का इजहार या बयान नहीं करती। वह उसी घर में रहती है, क्योंकि उसका अपना कोई नह है। पठान ने उसे पुत्री की तरह पाला है और अब वधू बना कर, घर

की सारी सुख-सम्पत्ति उसके हवाले कर जाना चाहता है। पर लड़का है, कि उसकी तरफ़ देखता तक नहीं। रशीदा उसे चाहती है, उससे प्यार करती है, अपने को उस पर न्योछावर कर देना चाहती है पर जबर्दस्ती नहीं। वह चाहती है, कि वह भार न बने। यह भी तय है कि वह उस घर से और उस लड़के से दूर हो कर, जी भी नहीं सकती। बाहरी संसार की कोई भी वस्तु उसे आकर्षक नहीं लगती। वह उसके लिए प्राण तक देने को प्रस्तुत है।

पठान का लड़का एक दूसरी लड़की से मुहब्बत करता है, जिससे वह पहाड़ियों की छाह में छिप-छिप कर मिलता है और बिना अपने बाप की राय के उससे शादी कर लेता है। पठान भी अजीब जढ़ी है। वह अब यह नहीं चाहता, कि लड़का घर में आए और लड़का भी इतना आत्माभिमानी, कि अपनी बात पर अड़ा रह कर, रात-दिन काम करता है, पिसता है पर घर नहीं जाता। होता यह है, कि काम के आधिक्य और खाने की कमी के कारण उसे टी० बी० हो जाती है और वह मर जाता है। अब वह विधवा औरत, जो अब तक माँ हो चुकी है, अकेली हो जाती है। रशीदा उसकी देख-भाल करती है और छिप-छिप कर उसे खाना पीना भी दे आती है। एक दिन, जब रशीदा को ज्ञान होता है, कि अपनी शादी के पहिले वह विधवा एक और लड़के से प्रेम करती थी और वह अब भी उसे चाहता है तो रशीदा उसे बहुत समझाती है और उसकी उस लड़के से शादी करा देती है। स्वयं उसके बच्चे को ले कर, जीवन भर अपने प्रेमी के एकमात्र चिह्न की रक्षा और प्यार में, अपनी ज़िन्दगी खपा देती है।

अब मैं क्या करूँ। रशीदा भी एक लड़की थी, जिस पर उसके कुनबे के न जाने कितने छोकरे मँडराया करते थे। उसका अक्षुण्ण रूप और उभरता हुआ यौवन, एक गहन, मानसिक प्रेम की ज्वाला में सुलग कर जल रहा है। मैंने स्वयं कितनी कोशिशें कीं, और कहा, कि

"रशीदा ! यह जवानी, यह रूप, बर्बाद करने के लिए नहीं है रे ! देख कहीं कोई मिल जाए तो शादी कर ले !" पर वह कुछ बोलती ही नहीं। हाँ, इस तरह की बातें सुन कर उसके सुर्ख़ गालों पर आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें कतार बाँध कर लुढ़कने लगती हैं। मैं साफ़ देखता हूँ, कि उसमें एक ऐसी ज्वाला है जो मानसिक कामवृत्तियों की तो बात ही दूर रही, किसी भी बात के लिए कुछ भी कहने की शक्ति अनायास ही छीन लेती है। रशीदा कभी-कभी मुझसे बड़े नरम स्वर में कहती है, "तुमने ठीक ही किया है बिरादर ! मैं तुम्हारी शुक्रगुज़ार हूँ।" में कैसे अपने मित्र को समझाऊँ। क्या कहूँ, कि वे मान जाएँ। कुछ समझ में नहीं आता।

पत्नी के एतराज़ की लिस्ट तो बनाना ही मुश्किल है। उसे संध्या, रमोला, लक्ष्मी और रशीदा, सभी में कहीं न कहीं कमी मिलती, है। उसने तो यह कहने की आदत ही बना ली है कि हमारे नारी पात्र, अपूर्ण और खंडित हैं। लेकिन मेरी नयी कहानी की जमुना ने तो जैसे उसका गला ही दबोच लिया है। उसका कहना है कि मैं इस कथा को ही नष्ट कर दूँ।

जमुना बारिन है। अभी ही गाँव में आयी है। उसकी पूर्व कथा यों है, कि उसने सात लोगों से अब तक शादियाँ कीं और सातों को छोड़ दिया। यह हमारा बारी नौकर, उसका आठवाँ पति था, जिसे ले कर वह कलकत्ता भाग गयी। वहाँ जब बारी नौकर को ठीक से काम-धंधा नहीं मिला और वे भूखों मरने लगे, तो वह एक दूसरे मिल-मज़दूर से मुहब्बत करने लगी।

एक दिन जब चुपके से उसका प्रेमी उसके पास आया, तो जमुना के भूखे और परेशान पति ने उस पर हमला कर दिया। प्रेमी ताकतवर था, फिर भी जमुना का पति काफ़ी देर तक हाथाबाँही करता रहा। अंत में वह बेहोश हो कर गिर पड़ा और जमुना ने उसे अपने प्रेमी के

साथ मिल कर, चारपाई से जकड़ कर बाँध दिया और बाहर से कोठरी में ताला लगा कर दोनों न जाने कहाँ चम्पत हो गये। बेचारे बारी ने उसी अँधेरे में अपनी साँसें तोड़ दीं।

मैं भी जमुना पर नाराज़ हूँ और पूछता चाहता हूँ, कि "जमुना, तुमने यह क्या कर दिया!" पर वह मुझे अँगूठा दिखा कर चल देती है। मैंने उसे बहुत आदर्श बताने चाहे, उसे एक सच्ची नारी की तरह चित्रित करना चाहा और कहा भी कि "अब तक जो हुआ, सो हुआ।" लेकिन उसने एक न मानी और बराबर आँखें मटका कर कहती रही कि "मैंने कुछ नहीं किया है रे लेखक! क्यों नहीं पूछता उन सारे लोगों से, जिन्होंने मुझे ऐसा बनाया। देखता नहीं, यह पंडित, वह ज़मींदार का छोकरा, और वह महाजन का छोटा भाई, सभी मेरे साथ सो चुके हैं, पर सब मुझे गाली देते हैं। और जब-जब मेरे पेट में बच्चा आया इन्होंने पंचायत करके उसे नाज़ायज़ करार दिया और मुझे गाँव से बाहर निकाल दिया।"

"मैं क्या-क्या गिनाऊँ। गर्म, नवजवान साँसों से ले कर ठंडी, मुर्दा साँसों तक की बौछार मेरे ऊपर हो चुकी है। एक ही रात की स्याही ने, पिता और पुत्र को मेरी आगोश में बाँधा है और मैं चुप रही हूँ; क्योंकि मैं जकड़ी हुई थी। मेरा हाथ, मेरा जीवन, मेरी रोटियाँ उन्हीं से चलती थीं। आज मैं आदी हो गयी हूँ। आज मैंने इन सबों को समझ लिया है। अब देखते न जाओ, मैं क्या-क्या करती हूँ!"

मैं थक गया हूँ। अब कुछ भी तो बस नहीं चल रहा है। इस औरत ने तो सचमुच मुझे बहुत ज़लील कर दिया है। आख़िर समाज वाले मुझे क्या कहेंगे पर यह मानती ही नहीं और हमारे हाथ से निकली जा रही है। उसका कहना है, "लिखते न जाओ मेरी कहानी। देखूँ, तुम क्या-क्या लिख सकते हो!"

यह सारे के सारे और न जाने कितने नारी पात्र, पर एक भी

मेरे बस के नहीं हैं, क्योंकि इनका अपना निजी अस्तित्व है। ये स्वतंत्र हैं, इन्हें मेरे दिमाग़ ने नहीं, बल्कि इन्होंने मेरे दिमाग़ को बनाया है। मैं क्या करूँ, चाची, प्रोफेसर, नारी मित्र, दोस्त और पत्नी, तुम लोग मुझे क्षमा कर दो! यह सब तो अपनी जगह पत्थर की तरह स्थिर हैं। कहते हैं, हममें ताक़त है, हममें गति है, हममें साहस है। हम शोले की तरह समाज की संकीर्णताओं पर बरस कर उसको नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते हैं।" लेकिन मैं तुम सबको वचन देता हूँ, कि मैं हारूँगा नहीं। मैं ऐसे नारी पात्रों के चक्कर में हूँ जो तुम सबों के मन को भावे। इसीलिए तो, देखो न! मैंने पत्रों के लिए विज्ञापन तैयार कर दिया है।

कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए!

—जो आम्रवल्लरी की भाँति तन्वांगी हो। मल्हार के कोमल स्वर-सी ध्वनि हो जिसकी, और छुई मुई-सा संकोच। पारलौकिक प्रेम में हर क्षण डूबी रहती हो—तपती हो, और कम से कम ब्याह के लिए माँ-बाप की आज्ञाकारिणी हो।

—जो पति की अंध भक्त हो और नारी धर्म की प्रतिष्ठा के लिए अपने को बलिदान कर सके।

—जो पुरुष-मात्र को एक ही निगाह से देखती हो।

—जो सामाजिक परिस्थितियों से मुक्त हो—ठीक कीचड़ में उगे कमल की तरह।

कृपया पत्र-व्यवहार कीजिए, धन्यवाद!

भगवतशरण उपाध्याय : मार्कण्डेय हिन्दी के उन नवोदित प्राणवान कथाकारों में हैं जिन्होंने मात्र अपने कृतित्व से हिन्दी के सफल लेखकों में अपना स्थान बनाया है। 'नया पथ'

नामवर सिंह : ऐसा नहीं कि गाँव की जिंदगी पर कहानियाँ पहले नहीं लिखी जाती थीं, लिखी जाती थीं, लेकिन जिस आत्मीयता के दर्शन मार्कण्डेय की कहानियों में होते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'साहित्यकार'

प्रकाशचन्द्र गुप्त : मार्कण्डेय की कहानियों में हम हिन्दी की नयी पीढ़ी का सक्षम और समर्थ रूप देखते हैं। 'कल्पना'

धर्मवीर भारती : इन कहानियों में शिल्प के सभी तत्व, स्थानीय रंगत से ले कर बोली तक मार्कण्डेय की जानी-पहचानी हुई है और उसे बड़ी सफलतापूर्वक उन्होंने शब्दों में उतारा है। 'कल्पना'